DRS/JNKVV/Technical/Horticulture/2026-27/01

तकनीकी बुलेटिन

बेर की वैज्ञानिक खेती: मुनाफे का नया आयाम

भा.कृ.अनु.प.–अखिल भारतीय शुष्क क्षेत्र फल समन्वित अनुसंधान परियोजना, उद्यानशास्त्र विभाग,
कृषि महाविद्यालय, जबलपुर
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)– 482004

DRS/JNKVV/Technical/Horticulture/2026-27/01

तकनीकी बुलेटिन

बेर की वैज्ञानिक खेती: मुनाफे का नया आयाम

डॉ. यू. के. चन्देरिया
डॉ. स्वाती बार्चे
डॉ. भारती चौधरी
डॉ. दीपक सिंह

भा.कृ.अनु.प.–अखिल भारतीय शुष्क क्षेत्र फल समन्वित अनुसंधान परियोजना, उद्यानशास्त्र विभाग,
कृषि महाविद्यालय, जबलपुर
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)– 482004

मार्गदर्शनकर्ता : डॉ. ए. के. जैन
संचालक अनुसंधान सेवाएँ, जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

प्रकाशनकर्ता : डॉ. स्वाती बार्चे
अधिष्ठाता, उद्यानिकी संकाय एवं विभागाध्यक्ष, उद्यानशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

लेखन एवं संकलनर्ता : डॉ. यू. के. चंन्देरिया, डॉ. स्वाती बार्चे, डॉ. भारती चौधरी एवं डॉ. दीपक सिंह

उचित उद्धरण : चन्देरिया यू. के., बार्चे एस., चौधरी बी. एवं सिंह डी. 2026. बेर की वैज्ञानिक खेतीः मुनाफे का नया आयाम. तकनीकि बुलेटिन. उद्यानशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.), 482004. डी.आर.एस. / जे.एन.के.वि.वि. / टेक्निकल बुलेटिन / हॉर्टिकल्चर / 2026–27 / 01 , पृ. 1–30.

अभिकल्पनकर्ता : डॉ. दीपक सिंह

प्रकाशन वर्ष : 2026

मुद्रण : उद्यानशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर

भा.कृ.अनु.प.–अखिल भारतीय शुष्क क्षेत्र फल समन्वित अनुसंधान परियोजना, उद्यानशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, जबलपुर
जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)– 482004

प्रो. प्रमोद कुमार मिश्रा
कुलपति / कुलगुरू
Prof. Pramod Kumar Mishra
Vice Chancellor

जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय
कृषि नगर, अधारताल, जबलपुर ४८२ ००४ (म.प्र.)
Jawaharlal Nehru Krishi Vishwa Vidyalaya
Krishi Nagar, Adhartal, Jabalpur 482 004 (M.P.)
Ph.: 0761-2681706 (O), Fax: 0761-2681389
E-mail: mishravcjnkvv@gmail.com

प्राक्कथन

अत्यंत हर्ष का विषय है कि बेर फल वृक्ष पर आधारित तकनीकी बुलेटिन का प्रकाशन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–अखिल भारतीय शुष्क क्षेत्र फल समन्वित अनुसंधान परियोजना की 30वीं अनुसंधान वैज्ञानिक समूह की वार्षिक बैठक के अवसर पर उद्यान शास्त्र विभाग द्वारा किया जा रहा है। भारत के कुल फल उत्पादन में मध्यप्रदेश की हिस्से दारी 8.59 प्रतिशत है। भारत में पैदा होने वाली कुल बेर उत्पादन का 37.02 प्रतिशत हिस्सा मध्यप्रदेश से आता है। मध्य प्रदेश में बेर का कुल क्षेत्रफल 13,726 हेक्टेयर तथा उत्पादन 2.02 लाख मीट्रिक टन है। यह शुष्क फल व्यवसायिक एवं पोषण के दृष्टि कोण से विशेष महत्व रखती है। इसमें विटामिन सी, डाइट फाइबर, पोटैशियम व लौह तत्व भरपूर मात्रा में उपलब्ध है। इस तकनीकी बुलेटिन के माध्यम से बेर की उन्नत किस्मों, खेती की वैज्ञानिक विधि, फसल पोषण प्रबंधन, कीट–रोग एवं व्याधियों के नियंत्रण से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी को सरल एवं व्यावहारिक तरीके से समाहित किया गया है।

मैं इस तकनीकी बुलेटिन के लेखन, संकलन एवं प्रकाशन से जुड़े सभी सदस्यों को हार्दिक बधाई प्रेषित करता हूँ। जिन्होंने कम समय में किसानों के हित के लिए इस तकनीकी बुलेटिन को प्रसारित किया। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह तकनीकी बुलेटिन किसानों, उद्यानिकी विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों, विद्यार्थियों, कृषि विस्तार अधिकारियों, उद्यमियों तथा बेर उत्पादन से जुड़े सभी हित धारकों के लिए एक महत्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ सिद्ध होगा। इसमें वर्णित तकनीकों को अपना कर किसान बेर की उत्पादकता, फल गुणवत्ता एवं लाभ प्रदता में वृद्धि कर सकेंगे तथा टिकाऊ उद्यानिकी विकास को बढ़ावा मिलेगा।

Mishra

(प्रमोद कुमार मिश्रा)

डॉ. ए. के. जैन
संचालक अनुसंधान सेवाएँ
Dr. A. K. Jain
Director Research Services

संचालनालय अनुसंधान सेवाएँ
Directorate of Research Services

जवाहरलाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय,
कृषि नगर, अधारताल, जबलपुर 482004 (म.प्र.)
Jawaharlal Nehru Krishi Vishwa Vidhyalaya,
Krishi Nagar, Adhartal, Jabalpur 482004 (M.P.)

Phone: 7612681778
Email: drsjnkvv@gmail.com

यह जानकर मुझे अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि उद्यानशास्त्र विभाग, कृषि महाविद्यालय, जबलपुर, जवाहरलाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा "बेर की वैज्ञानिक खेतीः मुनाफे का नया आयाम'' शीर्षक पर तकनीकी बुलेटिन का प्रकाशन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की अखिल भारतीय शुष्क क्षेत्र फल समन्वित अनुसंधान परियोजना के 30 वें अनुसंधान वैज्ञानिक समूह की वार्षिक बैठक के अवसर पर किया जा रहा है। बेर भारत के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों का एक महत्वपूर्ण फल वृक्ष है, जो किसानों की आय वृद्धि एवं पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मध्य प्रदेश बेर उत्पादन के क्षेत्र में देश के अग्रणी राज्यों में से एक है तथा राष्ट्रीय उत्पादन में इसका महत्वपूर्ण योगदान है। प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने की क्षमता, कम लागत वाली खेती तथा उच्च पोषण मूल्य के कारण बेर सतत उद्यानिकी विकास के लिए एक अत्यंत संभावनाशील फल फसल के रूप में उभरा है। किसी भी फसल की सफलता, वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकों की उपलब्धता एवं उनके प्रभावी प्रसार पर निर्भर करती है। इस तकनीकी बुलेटिन में बेर की उन्नत किस्मों, प्रवर्धन तकनीकों, बाग स्थापना, पोषक तत्व एवं जल प्रबंधन, प्रशिक्षण एवं छंटाई, कीट एवं रोग प्रबंधन, फलों की तुड़ाई, एवं उपज से संबंधित महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक जानकारी को सरल भाषा में समाहित किया गया है। इस प्रकाशन में प्रस्तुत जानकारी नवीनतम अनुसंधान उपलब्धियों एवं क्षेत्रीय अनुभवों पर आधारित है, जो इसे किसानों एवं शोधकर्ताओं दोनों के लिए उपयोगी बनाती है। मैं इस तकनीकी बुलेटिन के लेखन, संपादन, संकलन एवं प्रकाशन से जुड़े सभी वैज्ञानिकों एवं सदस्यों को उनके सराहनीय प्रयासों के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

(ए. के. जैन)

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	परिचय	1–2
2.	बेर की खेती एवं किसान की आर्थिक स्थिति	2
3.	पोषक तत्वों की उपलब्धता	3
4.	औषधीय महत्व	3–5
5.	व्युत्पत्ति, विस्तार एवं उत्पादन	5–8
6.	भूमि	8–10
7.	जलवायु	10–11
8.	बेर की किस्में	11–16
9.	प्रवर्धन	16–19
10.	बाग स्थापना के लिए भूमि की तैयारी	19–20
11.	पौध रोपण एवं दूरी	20
12.	सधाई एवं छंटाई	21–22
13.	सिंचाई	22
14.	खरपतवार नियंत्रण	23
15.	खाद एवं उर्वरक	23
16.	पौध संरक्षण	24–30
17.	तुड़ाई	30
18.	उपज	30

बेर की वैज्ञानिक खेतीः मुनाफे का नया आयाम

परिचय

बेर (*Ziziphus mauritiana* Lamk.) भारत के प्रमुख फल वृक्षों में से एक है, जो रैमनेसी (Rhamnaceae) कुल का सदस्य है। यह एक बहुवर्षीय, पर्णपाती तथा अत्यधिक सहनशील फल वृक्ष है, जिसकी खेती मुख्यतः उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में की जाती है। भारतीय कृषि व्यवस्था में बेर का विशेष महत्व है क्योंकि यह सीमित संसाधनों, कम वर्षा तथा प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी सफलतापूर्वक उत्पादन देने में सक्षम है। यही कारण है कि इसे शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की एक आदर्श फल फसल माना जाता है। बेर को सामान्यतः "गरीबों का सेब" अथवा "गरीबों का फल" भी कहा जाता है, किंतु वर्तमान समय में इसकी व्यावसायिक उपयोगिता, पोषणीय महत्ता तथा प्रसंस्करण की बढ़ती संभावनाओं के कारण इसका महत्व निरंतर बढ़ता जा रहा है।

भारत में इसकी खेती प्राचीन काल से की जाती रही है तथा इसका उल्लेख अनेक ऐतिहासिक एवं आयुर्वेदिक ग्रंथों में मिलता है। देश के विभिन्न भागों में इसकी अनेक स्थानीय एवं उन्नत किस्में पाई जाती हैं, जो इसकी समृद्ध आनुवंशिक विविधता को दर्शाती हैं। यह विविधता पौध प्रजनन कार्यक्रमों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई है तथा इसके आधार पर अनेक उन्नत एवं उच्च उत्पादक किस्मों का विकास किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि यह अत्यधिक तापमान, सूखा, कम वर्षा, लवणीयता तथा क्षारीयता जैसी परिस्थितियों को सहन कर सकता है। यही कारण है कि जलवायु परिवर्तन तथा प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के वर्तमान दौर में बेर को एक जलवायु–सहिष्णु (Climate Resilient) फल फसल के रूप में विशेष महत्व प्राप्त हुआ है।

बेर का वृक्ष सामान्यतः मध्यम आकार का होता है तथा इसकी जड़ प्रणाली अत्यंत विकसित एवं गहरी होती है। गहरी जड़ों के कारण यह मिट्टी की निचली परतों से जल एवं पोषक तत्वों का अवशोषण कर लेता है, जिससे सूखे की स्थिति में भी इसकी वृद्धि एवं उत्पादन पर अपेक्षाकृत कम प्रभाव पड़ता है। कई अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि बेर उन क्षेत्रों में भी आर्थिक रूप से लाभकारी सिद्ध हो सकता है जहाँ अन्य फल फसलें पर्याप्त उत्पादन देने में असमर्थ रहती हैं। पिछले कुछ दशकों में बेर उत्पादन तकनीकों में उल्लेखनीय प्रगति हुई है। उन्नत किस्मों के विकास, वैज्ञानिक प्रवर्धन तकनीकों, उच्च घनत्व रोपण, ड्रिप सिंचाई, फर्टिगेशन, समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन तथा समन्वित कीट एवं रोग प्रबंधन जैसी आधुनिक तकनीकों के उपयोग से इसकी उत्पादकता एवं गुणवत्ता में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है। विशेष रूप से वैज्ञानिक छंटाई (Pruning) को बेर उत्पादन का आधार माना जाता है, क्योंकि बेर में फलन मुख्यतः

वर्तमान मौसम की नई वृद्धि पर होता है। अतः उचित समय पर छंटाई करने से उच्च उत्पादन एवं बेहतर गुणवत्ता के फल प्राप्त किए जा सकते हैं। भारत सरकार, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) तथा विभिन्न राज्य कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा बेर उत्पादन तकनीकों के विकास एवं प्रसार हेतु निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं। अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित उन्नत किस्मों एवं वैज्ञानिक उत्पादन तकनीकों ने बेर उत्पादन को अधिक लाभकारी एवं टिकाऊ बनाया है। वर्तमान में गुणवत्तायुक्त रोपण सामग्री, समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन, आधुनिक सिंचाई प्रणालियों तथा उन्नत कटाई उपरांत तकनीकों के माध्यम से बेर उत्पादन में नई संभावनाएँ विकसित हुई हैं।

बेर की खेती एवं किसान की आर्थिक स्थिति

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन कृषि क्षेत्र के समक्ष एक गंभीर चुनौती के रूप में उभर रहा है। बढ़ता तापमान, वर्षा की अनिश्चितता, जल संसाधनों की कमी तथा भूमि क्षरण जैसी समस्याएँ कृषि उत्पादन को प्रभावित कर रही हैं। ऐसे परिदृश्य में बेर जैसी फसलें, जो कम जल की आवश्यकता रखती हैं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी उत्पादन देने में सक्षम हैं, भविष्य की टिकाऊ कृषि व्यवस्था के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। बेर की खेती न केवल किसानों की आय में वृद्धि करती है, बल्कि बंजर एवं अनुपयोगी भूमि के उत्पादक उपयोग, मृदा संरक्षण तथा पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने में भी योगदान देती है।

भारत में बेर की खेती का आर्थिक महत्व अत्यधिक है। यह फसल कम निवेश में अपेक्षाकृत अधिक लाभ प्रदान करती है तथा सीमांत एवं लघु किसानों के लिए आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। बेर के वृक्ष सामान्यतः रोपण के कुछ वर्षों के भीतर फल देना प्रारंभ कर देते हैं तथा उचित प्रबंधन की स्थिति में लंबे समय तक नियमित उत्पादन देते रहते हैं। इसकी उत्पादन लागत अपेक्षाकृत कम होती है, जबकि बाजार में इसके फलों की मांग लगातार बनी रहती है। इसके अतिरिक्त बेर से विभिन्न मूल्य संवर्धित उत्पाद जैसे मुरब्बा, कैंडी, जैम, जेली, स्क्वैश, शुष्क फल एवं पेय पदार्थ तैयार किए जा सकते हैं, जिससे किसानों एवं उद्यमियों के लिए अतिरिक्त आय के अवसर उत्पन्न होते हैं।

पोषक तत्वों की उपलब्धता

पोषणीय दृष्टि से बेर एक अत्यंत महत्वपूर्ण फल है। इसके फलों में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, खनिज लवण, विटामिन तथा विभिन्न जैव सक्रिय यौगिक प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। विशेष रूप से विटामिन 'सी' की मात्रा बेर में काफी अधिक होती है, जो मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके अतिरिक्त इसमें कैल्शियम, फॉस्फोरस, लौह, पोटैशियम तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्व भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं। फलों में उपस्थित एंटीऑक्सीडेंट यौगिक शरीर को मुक्त कणों (Free Radicals) से होने वाली क्षति से बचाने में सहायता करते हैं। इस प्रकार बेर न केवल ऊर्जा का स्रोत है, बल्कि पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बेर के फल में पोषण संयोजन निम्नानुसार तालिका में प्रदर्शित है:

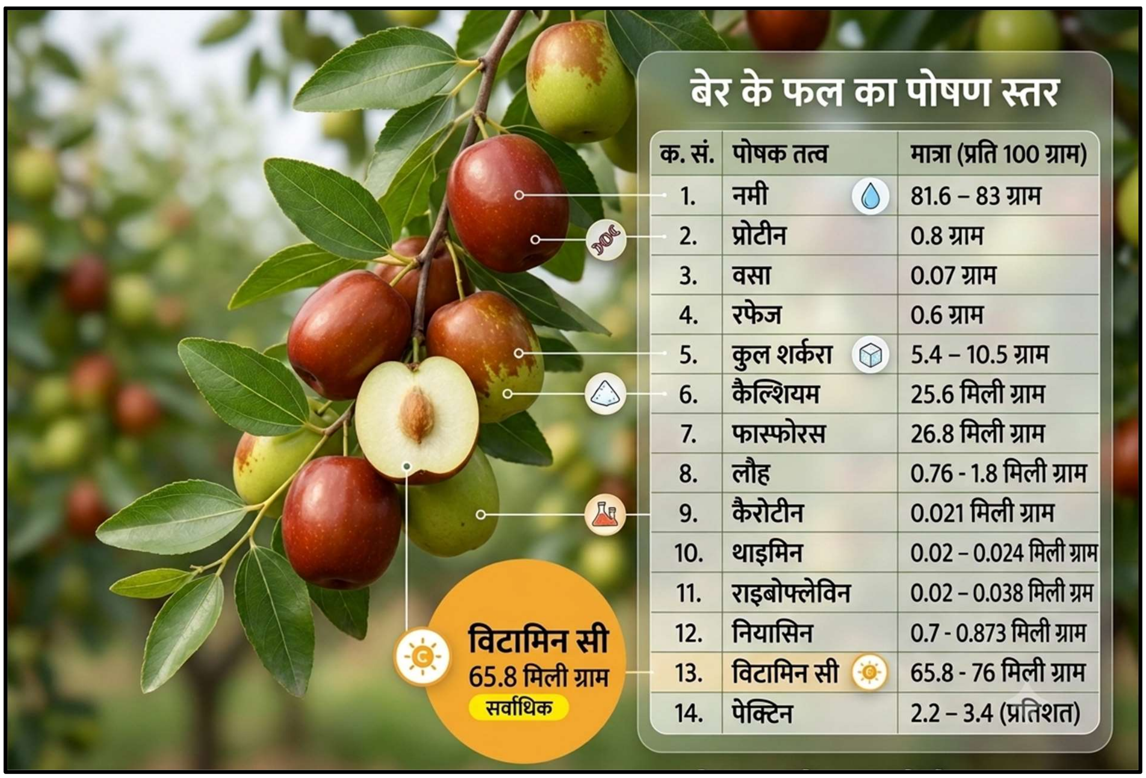

क. सं.	पोषक तत्व	मात्रा (प्रति 100 ग्राम)
1.	नमी	81.6 – 83 ग्राम
2.	प्रोटीन	0.8 ग्राम
3.	वसा	0.07 ग्राम
4.	रफेज	0.6 ग्राम
5.	कुल शर्करा	5.4 – 10.5 ग्राम
6.	कैल्शियम	25.6 मिली ग्राम
7.	फास्फोरस	26.8 मिली ग्राम
8.	लौह	0.76 - 1.8 मिली ग्राम
9.	कैरोटीन	0.021 मिली ग्राम
10.	थाइमिन	0.02 – 0.024 मिली ग्राम
11.	राइबोफ्लेविन	0.02 – 0.038 मिली ग्रम
12.	नियासिन	0.7 - 0.873 मिली ग्राम
13.	विटामिन सी	65.8 - 76 मिली ग्राम
14.	पेक्टिन	2.2 – 3.4 (प्रतिशत)

स्त्रोतः मोर्टन (1987), पारेक एवं धाका (2008), पोरक व अन्य (2009)

औषधीय महत्व

औषधीय दृष्टि से भी बेर का महत्व अत्यधिक है। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति में इसके फल, पत्तियाँ, जड़ एवं छाल का उपयोग विभिन्न रोगों के उपचार में किया जाता रहा है। बेर के फल शीतल, बलवर्धक तथा रक्तशोधक माने जाते हैं। पत्तियों का उपयोग त्वचा संबंधी रोगों में तथा जड़ों एवं छाल का

उपयोग विभिन्न औषधीय तैयारियों में किया जाता है। आधुनिक वैज्ञानिक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि बेर में उपस्थित विभिन्न फाइटोकेमिकल्स में प्रतिऑक्सीकारक, जीवाणुरोधी, विषाणुरोधी तथा सूजनरोधी गुण पाए जाते हैं। इन गुणों के कारण बेर को औषधीय एवं पोषणीय दृष्टि से एक महत्वपूर्ण फल माना जाता है।

पत्तियाँ एवं छाल

- छाल का उपयोग त्वचा संबंधित रोगों एवं सूजन कम करने में सहायक है।
- बेर के पत्ते अपच, अतिसार एवं दस्त में सहायक होते है। सुखाये हुए पत्तों का काढ़ा अतिसार को कम करने एवं पाचन तंत्र को सुदृढ़ करने हेतु दिया जाता है।
- पत्तों का काढ़ा हल्का डाययुरेटिक (मूत्रवर्धक) के रूप में काम करता है, मूत्र निकासी और मूत्र नलियों के अस्थिरता में सहायता करता है।
- पत्तों एवं छाल का लेप पिंपल्स, एक्जिमा, खुजली, फोड़े–फुंसियां व अन्य त्वचा संक्रमणों पर लगाने से संक्रमण कम और उपचार तेज होता है।

- पत्तों का पोल्टिस या लेप घावों व अल्सर पर लगाने से तेजी से भरने में मदद मिलती है।
- पत्तों एवं छाल का लेप (कभी अन्य वनस्पतियों के साथ मिश्रण करके) रूमेटिज्म, गठिया और जोड़ों में सूजन व दर्द कम करने के लिए लगाया जाता है।
- ताजे पत्तों का लेप सिर पर लगाने से सिरदर्द में आराम मिलता है।
- पत्तों एवं छाल को पानी में उबालकर उस पानी से स्नान करने या शरीर पर लगाने से शरीर की गर्मी और पित्त की समस्या कम होती है।
- पत्तों का काढ़ा पीने से खांसी, गले की खराश और हल्के श्वसन रोगों में राहत मिलती है।
- पत्तों को चबाने या उबालकर उस पानी से कुल्ला करने से मसूड़ों की सूजन, दर्द और मसूड़ों से खून बहने में आराम मिलता है।
- बेर के पत्तों का लेप (आंवला व नीम के साथ) सिर पर लगाने से बालों का झड़ना कम होता है।

- ताजे पत्तों का काढ़ा बाल साफ करने के लिए उपयोग करने से बालों की मजबूती व कम झड़ने में सहायता होती है।
- पत्तों में हल्का सेडाटिव (शांत करने वाला) प्रभाव होता है, इसलिए तनाव और हल्के अवसाद में आयुर्वेद में उपयोग किया जाता है।

बीज

- आयुर्वेद के अनुसार बेर के बीज का चूर्ण रक्त प्रवाह को सुधारने में सहायक बताया जाता है।
- बीजों में मौजूद वसायुक्त तत्व आंतों को चिकनाई प्रदान करते हैं, जिससे कब्ज और अपच पीन में आराम मिलता है।
- बेर के बीजों के अर्क को शामक और चिंता–विरोधी (प्रभाव के लिए उपयोग किया जाता है। कम खुराक पर चिंता कम करने और उच्च खुराक पर शांत व नींद बढ़ाने में प्रभावी है।
- बेर के बीजों से बने अर्क को मानसिक दुर्बलता दूर करने, मस्तिष्क कार्य को बढ़ाने और ग्लुटेमिक एसिड पैदा करके मस्तिष्क के कार्य को सुधारने में सहायक माना जाता है।
- बेर के फल में विटामिन सी, कैल्शियम, लोहा, फास्फोरस, जस्ता आदि होने के कारण शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत करने में सहायता होती है।

व्युत्पत्ति, विस्तार एवं उत्पादन

बेर की उत्पत्ति या उद्गम क्षेत्र भारत तथा इंडो–चीन क्षेत्र रहा है। भारत में बेर की खेती मुख्य रूप से राजस्थान, गुजरात, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना तथा तमिलनाडु राज्यों में की जाती है। इन क्षेत्रों की जलवायु सामान्यतः शुष्क अथवा अर्ध–शुष्क होती है, जहाँ अन्य फल वृक्षों की तुलना में बेर अधिक सफलतापूर्वक उगाया जाता है। राष्ट्रीय स्तर पर बेर का क्षेत्रफल 50,000 हेक्टेयर है जिससे प्राप्त होने वाला कुल उत्पादन 5,46,000 मिट्रिक टन है। मध्यप्रदेश में बेर फसल का विस्तार प्रमुख रुप से सागर, छिन्दवाड़ा, सिवनी, बैतुल, झाबुआ, अलिराजपुर, सीधी, धार, बड़वानी एवं विदिसा जिलों में अधिक है। मध्यप्रदेश में बेर का कुल क्षेत्रफल 13726.97 हेक्टेयर है जिससे 202177.71 मिट्रिक टन का उत्पादन प्राप्त होता है। सामान्यतः मध्यप्रदेश अर्ध शुष्क क्षेत्र में आता है, यहाँ पर औसतन बेर की उत्पादकता 14.72 मिट्रिक टन प्रति हेक्टेयर है।

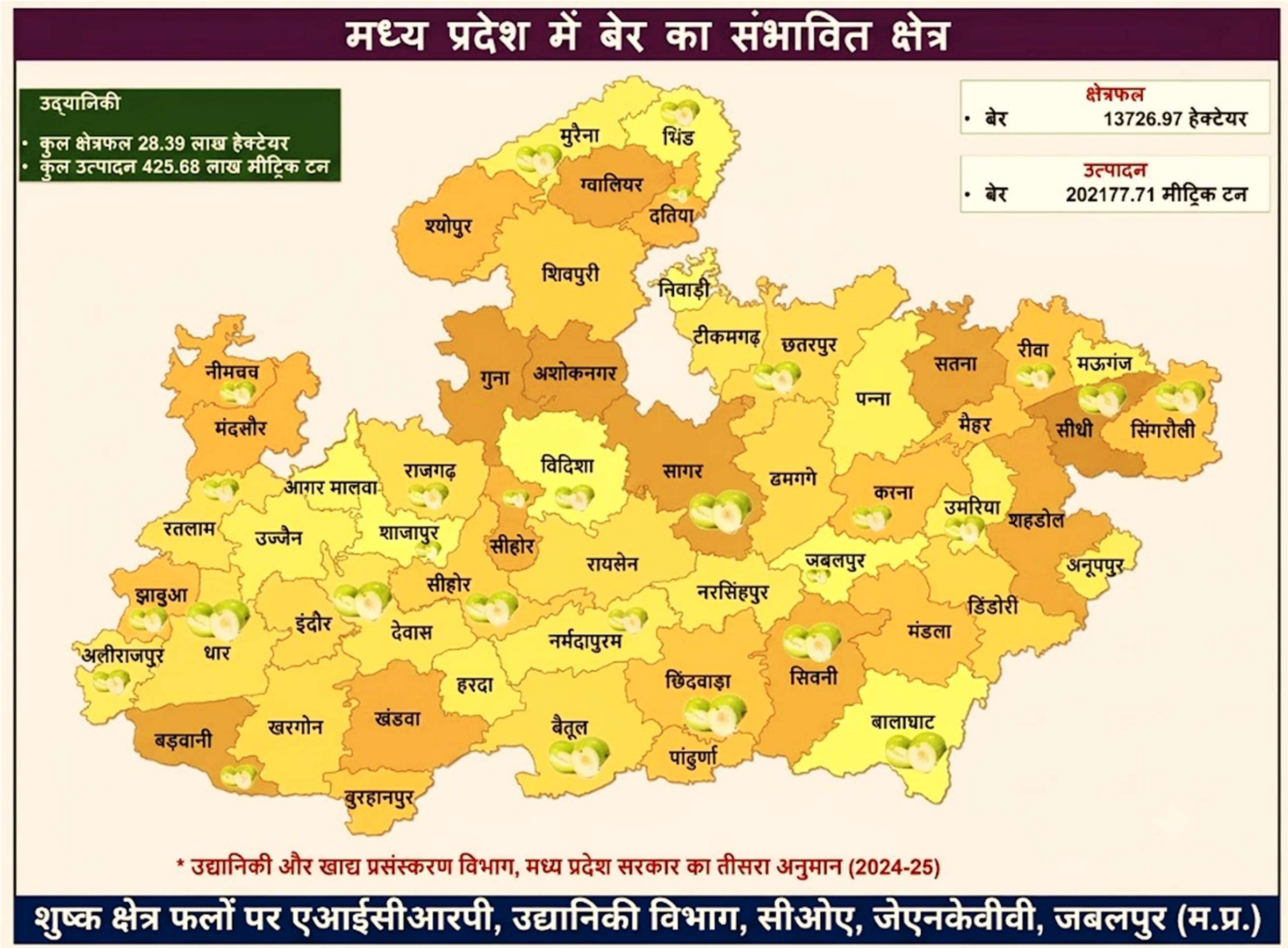
मध्य प्रदेश में बेर का संभावित क्षेत्र
उद्यानिकी
• कुल क्षेत्रफल 28.39 लाख हेक्टेयर
• कुल उत्पादन 425.68 लाख मीट्रिक टन
क्षेत्रफल
• बेर 13726.97 हेक्टेयर
उत्पादन
• बेर 202177.71 मीट्रिक टन
मुरैना
भिंड
ग्वालियर
दतिया
श्योपुर
शिवपुरी
निवाड़ी
टीकमगढ़
छतरपुर
सतना
रीवा
मऊगंज
गुना
अशोकनगर
नीमचच
मंदसौर
पन्ना
मैहर
सीधी
सिंगरौली
विदिशा
सागर
दमगगे
करना
उमरिया
शहडोल
राजगढ़
आगर मालवा
रतलाम
उज्जैन
शाजापुर
सीहोर
रायसेन
जबलपुर
अनूपपुर
झाबुआ
इंदौर
देवास
नरसिंहपुर
डिंडोरी
मंडला
अलीराजपुर
धार
नर्मदापुरम
हरदा
छिंदवाड़ा
सिवनी
बालाघाट
बड़वानी
खरगोन
खंडवा
बैतूल
पांढुर्णा
बुरहानपुर
* उद्यानिकी और खाद्य प्रसंस्करण विभाग, मध्य प्रदेश सरकार का तीसरा अनुमान (2024-25)
शुष्क क्षेत्र फलों पर एआईसीआरपी, उद्यानिकी विभाग, सीओए, जेएनकेवीवी, जबलपुर (म.प्र.)

जिजिफस की विभिन्न प्रजातियाँ एवं उनका महत्वः

स. क्र.	प्रजाति	उत्पत्ति / उद्गम	प्रमुख महत्व
1.	*जिजिफस मौरिशियाना* लैम.	इन्डो – मलाया क्षेत्र	यह प्रमुख व्यावसायिक बेर है जो बाजार में उपलब्ध होता है और बहुतायत में इसकी खेती की जाती है।
2.	*जिजिफस न्युमुलॉरिया* (बर्म एफ.) व्हाईट एवं आर्न.	भारतीय उपमहाद्वीप	यह सूखे के प्रति सहनशील होता है और अधिक लवणता वाली भूमि के लिए एक अच्छा मूलवृन्त है।
3.	*जिजिफस जुजुबा* मिल.	उत्तरीय चाईना	इसे चीनी बेर भी कहते है। यह ठण्ड के प्रति सहनशीलता प्रदर्शित करता है एवं रोगो के प्रति प्रतिरोधक होता है।
4.	*जिजिफस स्पिना क्रिस्टा* (एल.) डेस्फ.	मध्य पूर्वी से उत्तर पूर्वी अफ्रीका	ठस प्रजाति में उष्मा एवं लवणता के प्रति सहनशीलता होती है। अजैविक तनावों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता वाले गुणों को *जिजिफस मौरिशियाना* में स्थानांतरित करने हेतु उपयोगी है।
5.	*जिजिफस लोटस* (एल.) लैम.	भूमध्यसागरीय घाटी	यह प्रजाति भूमध्यसागरीय शुष्कक्षेत्र में पाये जाते है जो कि सूखे प्रति सहनशीलता के गुणों से युक्त मूलवृन्त हेतु उपयुक्त है।
6.	*जिजिफस म्युक्रोनाटा* वाईल्ड	दक्षिणी अफ्रीका	सूखे एवं रोगों के प्रति प्रतिरोधी होता है।
7.	*जिजिफस आक्सीफाईला* एज.	पश्चिमी हिमालय	यह हिमालयी प्रजाति है जो कि शीत वातावरण के लिए अनुकूल है।
8.	*जिजिफस जाइलोपाईरस* (रेत्ज.) वाईल्ड	भारतीय प्रायद्वीप	यह भारत में मिलने वाली जंगली प्रजाति है जो ओज युक्त एवं अजैविक तनावों के प्रति सहनशील होता है।

9.	*जिजिफस र्युगोसा* लैम.	दक्षिण एवं दक्षिण पूर्वी एशिया	दक्षिण एशियाई क्षेत्र में पाई जाने वाली प्रजाति है जो कि रोग प्रतिरोधक एवं आनुवांशिक विविधता को प्रदर्शित करता है।
10.	*जिजिफस ओइनोपोलिया* (एल.) मिल.	उष्णकटिबंधीय एशिया	कठोर जंगली प्रजाति है जो कि जैविक तनाव के प्रति प्रतिरोधक क्षमता युक्त होती है।
11.	*जिजिफस एबीसिनिका* होस्ट. एक्स ए रिच	उष्णकटिबंधीय पूर्वी अफ्रीका	यह अफ्रीकी शुष्क क्षेत्र में पाई जाने वाली प्रजाति है जो कि सूखे के प्रति सहनशीलता युक्त जीन स्थानान्तरण हेतु उपयुक्त होता है।
12.	*जिजिफस जेयहेरियाना* सान्ड.	दक्षिणी अफ्रीका	दक्षिण अफ्रीकी प्रजाति है जो कि जैविक – अजैविक तनावों के प्रति सहनशीलता को प्रदर्शित करती है एवं नई किस्मों के विकास में उपयोगी है।

भूमिः

बेर की सफल एवं मुनाफा देने वाली खेती के लिए ऐसी मृदा आवश्यक होती है जो इसकी गहरी एवं सशक्त जड़ प्रणाली के विकास को समर्थन प्रदान कर सके, साथ ही उसमें मध्यम उर्वरता, पर्याप्त वायुसंचार तथा लगभग उदासीन से मध्यम क्षारीय (पी.एच. 7.0–8.5) हो। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, बीकानेर तथा विभिन्न कृषि एवं उद्यानिकी विश्वविद्यालयों द्वारा किए गए वैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि बेर मृदा की विविध परिस्थितियों को सहन करने वाली अत्यंत अनुकूलनीय फल फसल है। तथापि, अधिकतम उत्पादन एवं उत्तम फल गुणवत्ता के लिए अच्छी जल निकास वाली बलुई दोमट मृदा, पर्याप्त कार्बनिक पदार्थ तथा 7.0 से 8.5 के मध्य पी.एच. मान वाली सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है। बेर को एक कठोर, गहरी जड़ वाली तथा व्यापक अनुकूलन क्षमता वाली फल प्रजाति माना जाता है। यह बलुई, चिकनी, लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में भी उग सकता है। हालांकि इसकी यह विशेषता यह नहीं दर्शाती कि मृदा का प्रकार महत्वहीन है। वैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि यद्यपि बेर सीमांत एवं कम उर्वरता वाली भूमि में जीवित रह सकता है, किन्तु अधिक उत्पादन एवं उच्च गुणवत्ता के फल प्राप्त करने

के लिए उपजाऊ, अच्छी जल निकास वाली तथा कार्बनिक पदार्थों से समृद्ध बलुई दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है।

आर्या एवं अन्य, 2024 के अनुसार हरियाणा के रेवाड़ी जिले में स्थित बेर बागानों के मृदा सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि अधिकांश मृदाएँ बलुई प्रकृति की थीं तथा उनमें गहरी जड़ प्रणाली के विकास हेतु उपयुक्त वायुसंचार एवं जल निकास उपलब्ध था। ऐसी मृदाएँ अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में सूखा सहनशीलता तथा पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए अत्यंत लाभकारी सिद्ध होती हैं। बेर की जड़ प्रणाली मुख्यतः एक गहरी मुख्य जड़ (टेप रुट) तथा अनेक पार्श्व जड़ों से मिलकर बनी होती है, जो मृदा की गहरी परतों तक पहुँचकर जल एवं पोषक तत्वों का अवशोषण करती हैं। इस प्रकार की जड़ संरचना के विकास के लिए ऐसी मृदा आवश्यक होती है जो अत्यधिक सघन अथवा कठोर न हो। बलुई दोमट एवं दोमट–बलुई मृदाएँ निम्नलिखित कारणों से बेर के लिए आदर्श मानी जाती हैं–

- कम घनत्व एवं अधिक रंध्रता के कारण जड़ों का तीव्र विकास।
- उत्कृष्ट जल निकास क्षमता, जिससे जलभराव की समस्या नहीं होती।
- मध्यम जल धारण क्षमता, जिसे सिंचाई एवं मल्चिंग द्वारा प्रभावी रूप से प्रबंधित किया जा सकता है।

रेवाड़ी क्षेत्र में किए गए अध्ययनों में मृदा का घनत्व (बल्क डेन्सिटी) 1.33–1.59 $Mg\,m^{-3}$ पाया गया, जो गहरी जड़ वाली फसलों के लिए उपयुक्त माना जाता है। सामान्यतः 1.7 $Mg\,m^{-3}$ से अधिक घनत्व जड़ों के विकास में बाधा उत्पन्न करता है तथा पौधों की वृद्धि एवं उत्पादन को प्रभावित करता है। यद्यपि चिकनी मृदाएँ अधिक जल एवं पोषक तत्व धारण करती हैं, किन्तु यदि उनमें जल निकास की उचित व्यवस्था न हो तो जड़ों के विकास में अवरोध उत्पन्न होता है। ऐसी परिस्थितियों में गहरी जुताई, कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग तथा ऊँची क्यारियों का निर्माण करके मृदा संरचना एवं जल निकास में सुधार किया जा सकता है।

बेर क्षारीयता एवं हल्की लवणता को सहन करने की उल्लेखनीय क्षमता रखता है। पी. एच. 7.3 से 9.2 तक की मृदाओं में भी बेर के वृक्ष संतोषजनक रूप से विकसित हो सकते हैं, बशर्ते कि मृदा में जल निकास अच्छा हो तथा लवणता का स्तर कम हो। व्यावसायिक स्तर पर बेर की खेती के लिए पी. एच. 7.0–8.5 सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है। पी.एच. 9.0 से अधिक होने पर तथा लवणता बढ़ने पर उत्पादकता में गिरावट देखी जाती है। बेर सूखा एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को सहन करने वाली फसल

है, फिर भी मृदा में कार्बनिक कार्बन की मात्रा इसके विकास, उत्पादन तथा फल गुणवत्ता को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों की मृदाओं में सामान्यतः आर्गेनिक कार्बन की मात्रा 0.2 प्रतिशत से कम पाई जाती है, जिससे सूक्ष्मजीवी गतिविधियाँ घटती हैं, पोषक तत्वों का चक्रण प्रभावित होता है एवं जल धारण क्षमता कम हो जाती है।

जलवायु:

बेर एक अत्यंत सहनशील, कम जल आवश्यकता वाली तथा शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फल फसल है। यह सीमित जल उपलब्धता एवं उच्च तापमान की परिस्थितियों में भी गुणवत्तापूर्ण फल उत्पादन करने की क्षमता रखती है। इसे समुद्र तल से लगभग 1500 मीटर की ऊँचाई तक विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। 1000–1500 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में निम्न तापमान, पाले का बढ़ा हुआ जोखिम तथा अपेक्षाकृत छोटा वृद्धि काल फल उत्पादन एवं गुणवत्ता को प्रभावित कर सकता है। इसलिए व्यावसायिक स्तर पर बेर की खेती निम्न एवं मध्यम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में अधिक लाभकारी सिद्ध होती है। मध्य प्रदेश के सतना जिले की ऊँचाई लगभग 600–700 मीटर है, जो बेर की व्यावसायिक खेती के लिए पूर्णतः उपयुक्त मानी जाती है। बेर के व्यावसायिक बागान सामान्यतः उन क्षेत्रों में सफलतापूर्वक पाए जाते हैं जहाँ न्यूनतम तापमान 4 से 12℃ के बीच रहता है। यह वृक्ष अल्प अवधि के लिए –2 ℃ तक के तापमान को सहन कर सकता है, किन्तु जमाव बिंदु (0 ℃ या उससे कम) के तापमान के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होता है। निरंतर तीव्र पाले की स्थिति में निम्नलिखित समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं:

- नवोदित पौधों को क्षति
- पुष्पन में कमी
- फल लगना (Fruit Set) में गिरावट
- वृक्षों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव

बेर अत्यधिक गर्मी को सहन करने की असाधारण क्षमता रखता है। यह वृक्ष सामान्यतः 39–42℃ तापमान पर भी स्वस्थ रूप से विकसित होता है तथा अल्प अवधि के लिए 49–50℃ तक का तापमान भी सहन कर सकता है। राजस्थान के शुष्क क्षेत्रों में किए गए अनुसंधानों से यह सिद्ध हुआ है कि

अत्यधिक तापमान की स्थिति में वृक्ष अपनी पत्तियाँ गिराकर आंशिक सुप्तावस्था (Dormancy) में प्रवेश कर जाता है, जिससे चयापचय क्रियाएँ नियंत्रित रहती हैं तथा वृक्ष जीवित बना रहता है। हालाँकि, अत्यधिक तापमान का प्रभाव फल लगने पर पड़ता है। 35°C से अधिक तापमान होने पर परागकणों की जीवंतता कम होना, पुष्पों का फल में रूपांतरण घट जाना, फलों के आकार पर प्रतिकूल प्रभाव व आकार छोटा रह जाना आदि समस्याएँ मुख्य है। बेर कम से मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त फल फसल है। सामान्यतः 400–600 मिमी वार्षिक वर्षा इसकी सफल खेती के लिए पर्याप्त मानी जाती है।

बेर की किस्मेः

बेर की किस्मों को उनके परिपक्वन अवधि के आधार पर तीन श्रेणियों मे बाँटा जा सकता हैः–

स. क्र.	श्रेणी	किस्मों के नाम
(अ)	**अगेती किस्म**	गेला, सेब, गोमा कीर्ति, सफेदा
(ब)	**मध्यकालिक किस्म**	कैथली, रेशमी, बनारसी, बनारसी कराका, मेहरून
(स)	**पछेती किस्म**	उमरान, इलायची, कांथा, मुंडिया

अगेती किस्मेंः ये किस्में सामान्यतः अक्टूबर से नवंबर के मध्य पक जाती हैं तथा उन क्षेत्रों में विशेष रूप से लोकप्रिय हैं जहाँ प्रारंभिक बाजार उपलब्ध होता है।

(1) **गोला**ः इस किस्म का गूदा और बीज का अनुपात 0.14 है। इसकी उपज 31 से 36 कि.ग्रा. प्रति पौध है। फलों का कुल घुलनशील ठोस 16.8 बिक्स तक होता है। यह किस्म उत्तरी भारत में बहुतायत से उगाया जा रहा है। पेड़ का फैलावदार आकार होता है। पत्तियाँ हृदयाकार होती हैं, जिनकी लंबाई 6.7 सेमी तथा चौड़ाई 4.2 सेमी होती है। फल लगभग गोल होता है, स्टाइलर सिरा चपटा तथा डंठल वाला सिरा गोल होता है। फल का छिलका चमकीला पीला, चिकना और आकर्षक होता है। इसके फल जनवरी के प्रारंभ से जनवरी के अंत तक पकते हैं।

(2) **सेब**ः इसके फल आकार में अंडाकार होते हैं। यह किस्म गोला के बाद परिपक्व होती है, किंतु फिर भी प्रारंभिक से मध्यकालीन श्रेणी में आती है। इस किस्म के वृक्ष सीधे तथा ऊर्ध्वमुखी वृद्धि वाले होते हैं। इसकी पत्तियाँ अंडाकार एवं चौड़ी होती हैं, जिनका लंबाई–चौड़ाई अनुपात लगभग 1.2 होता है। पत्ती का शीर्ष उपनुकीला (subacute) तथा हल्का मुड़ा हुआ होता है, जबकि आधार चौड़ा होता है। पर्णवृन्त (petiole) की ऊपरी सतह हल्के हरे रंग की होती है, जिस पर बैंगनी आभा दिखाई देती है, जबकि निचली (अमदजतंस) सतह हल्के हरे रंग की होती है। फल प्रारंभिक अवस्था में परिपक्व होने वाले होते हैं। प्रत्येक फल का औसत भार लगभग 24.6 ग्राम होता है। फल का

स्टाइलर सिरा गोलाकार होता है, जिसके मध्य में हल्का अवसाद (depression) पाया जाता है। गूदे एवं गुठली का अनुपात लगभग 14.4 होता है। फल का छिलका पीत–हरित (yellowish green) रंग का होता है, जिस पर भूरे रंग के छोटे–छोटे धब्बे पाए जाते हैं तथा इसकी सतह हल्की खुरदरी होती है। गूदा श्वेत, कठोर तथा 16.8 ब्रिक्स कुल घुलनशील ठोस पदार्थ युक्त होता है।

(3) **गोमा कीर्तिः** यह बेर की एक उन्नत किस्म है, जिसका विकास राजस्थान के बीकानेर स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान द्वारा लोकप्रिय 'उमरान' किस्म के क्लोनल चयन के माध्यम से किया गया है।यह किस्म अपनी जनक किस्म 'उमरान' की तुलना में शीघ्र परिपक्व होने वाली है, जबकि उमरान को देर से पकने वाली किस्म माना जाता है। फल लगने से लेकर पूर्ण परिपक्वता तक पहुँचने में इसे अपेक्षाकृत कम समय लगता है, जो औसतन लगभग 128 दिनों का होता है। इसके फल अंडाकार आकार के होते हैं तथा उनकी औसत लंबाई लगभग 3.44 सेमी होती है। फलों का गूदा कोमल, रसदार तथा उत्कृष्ट स्वाद वाला होता है। इसके अतिरिक्त, फलों में विशिष्ट गुरुत्व अपेक्षाकृत अधिक पाया जाता है, जो उनकी गुणवत्ता को और बेहतर बनाता है। यह किस्म पारंपरिक बेर की किस्मों की तुलना में लगभग 25.8 से 38.2 प्रतिशत अधिक उपज प्रदान करने में सक्षम है। साथ ही, इसके फलों की भंडारण क्षमता भी उत्कृष्ट होती है। परिवहन एवं भंडारण के दौरान फलों में शारीरिक भार हानि केवल लगभग 12 प्रतिशत तक सीमित रहती है, जिससे उनकी विपणन योग्यता बनी रहती है।

(4) **सफेदाः** बेर की यह किस्म अपने बड़े आकार के आकर्षक फलों के लिए जानी जाती है, जिनकी सतह अत्यंत चिकनी एवं चमकदार होती है तथा पूर्ण परिपक्वता पर उनका रंग सुनहरा–पीला हो जाता है। फलों का गूदा कोमल, रसयुक्त और अत्यधिक मधुर होता है, जिसमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा लगभग 19 प्रतिशत तक पाई जाती है। यह एक शीघ्र पकने वाली किस्म है, जिसके फल सामान्यतः नवंबर माह के मध्य तक पूर्ण परिपक्वता प्राप्त कर लेते हैं। इस किस्म में चूर्णिल आसिता रोग के प्रति इसकी उच्च प्रतिरोधक क्षमता है, जिसके कारण यह अन्य किस्मों की तुलना में अधिक विश्वसनीय एवं व्यावसायिक रूप से लाभकारी सिद्ध होती है। यह किस्म 15°C से 40°C तापमान वाले उष्णकटिबंधीय एवं उपोष्णकटिबंधीय शुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक विकसित होती है तथा कम वर्षा (लगभग 300–400 मि.मी.) की परिस्थितियों में भी अच्छा उत्पादन देती है।

मध्यकालिक किस्मः ये किस्में सामान्यतः नवंबर से दिसंबर के मध्य पकती हैं। मध्यकालीन किस्मों में रासायनिक गुणों का संतुलन अपेक्षाकृत बेहतर होता है तथा इनकी तुड़ाई अवधि अधिक लंबी होती है। इसलिए ये ताजा फल एवं प्रसंस्करण दोनों उद्देश्यों के लिए उपयुक्त हैं।

(5) कैथली: यह बेर की एक मध्य–ऋतु में परिपक्व होने वाली प्रमुख किस्म है, जिसके वृक्ष सीधे एवं सुदृढ़ वृद्धि वाले होते हैं। इसकी पत्तियाँ हृदयाकार होती हैं तथा उनका लंबाई–चौड़ाई अनुपात लगभग 2.2 पाया जाता है। पत्ती का शीर्ष नुकीला एवं हल्का वक्राकार होता है, जबकि आधार क्रमशः संकरा होता जाता है। गूदे एवं गुठली का अनुपात लगभग 32.1 होने के कारण फल में उपयोगी भाग की मात्रा अधिक होती है। फल का स्टाइलर सिरा गोलाकार तथा डंठल वाला सिरा उथला होता है। फल का छिलका पीताभ–हरित रंग का होता है तथा फलभित्ति के दोनों सिरों पर हल्की गुहाएँ (cavities) पाई जाती हैं। कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा लगभग 15.3 ब्रिक्स होती है, जो इसके संतुलित स्वाद एवं उपभोक्ता स्वीकृति को बढ़ाती है। यह किस्म प्रति वृक्ष लगभग 123 किलोग्राम तक फल उत्पादन देने की क्षमता रखती है।

(6) रेशमी: रेशमी मध्य–ऋतु में परिपक्व होने वाली उन्नत किस्म है, जो अपनी मधुर स्वाद, संतुलित अम्लता तथा उत्कृष्ट फल गुणवत्ता के लिए जानी जाती है। यह किस्म सामान्यतः फरवरी के अंत से मार्च तक फल उत्पादन देती है, यद्यपि विभिन्न क्षेत्रों की जलवायु परिस्थितियों के अनुसार इसकी परिपक्वता अवधि मध्य नवंबर से मार्च तक हो सकती है। इसके फल मध्यम आकार के होते हैं तथा इनमें कोमल, रसदार और स्वादिष्ट गूदा पाया जाता है। इसके वृक्ष सशक्त वृद्धि वाले होते हैं तथा छंटाई के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया प्रदर्शित करते हैं, जिससे उनकी उत्पादकता एवं वृक्ष संरचना में सुधार होता है। यह किस्म 15°C से 40°C तापमान तथा लगभग 300–400 मिमी वार्षिक वर्षा वाले गर्म एवं शुष्क क्षेत्रों में सफलतापूर्वक विकसित होती है और समुद्र तल से लगभग 1000 मीटर की ऊँचाई तक इसकी खेती की जा सकती है। औसतन प्रति वृक्ष 80 कि.ग्रा. (शुष्क क्षेत्र) से 150 कि. ग्रा. (सिंचित क्षेत्र) की उपज प्राप्त होती है।

(7) बनारसी: यह बेर की एक महत्वपूर्ण किस्म है, इस किस्म के परिपक्व फल का औसत भार सामान्यतः 25.66 से 30.0 ग्राम के मध्य होता है तथा इसकी औसत लंबाई और चौड़ाई क्रमशः लगभग 43.65 मिमी एवं 25.66 मिमी पाई जाती है। इसकी गुठली नुकीली एवं गदाकार होती है, जिसकी औसत लंबाई 28.29 मिमी, चौड़ाई 7.43 मिमी तथा भार लगभग 1.26 ग्राम होता है। फल में गूदे की मात्रा अत्यधिक होने के कारण गूदा–गुठली अनुपात बहुत अनुकूल पाया जाता है, जिसमें लगभग 92 से 95 प्रतिशत भाग खाद्य गूदे का तथा केवल 5 से 8 प्रतिशत भाग गुठली का होता है। इसके फलों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा लगभग 14.0 से 15.3 प्रतिशत तक पाई जाती है, जो इसकी उच्च मिठास एवं उपभोक्ता स्वीकार्यता को दर्शाती है। पोषणीय दृष्टि से यह किस्म विशेष महत्व रखती है, क्योंकि इसके 100 ग्राम ताजे गूदे में लगभग 65 से 76.4 मिलीग्राम विटामिन–सी (एस्कॉर्बिक अम्ल) पाया जाता है, इसके अतिरिक्त, कुल शर्करा की मात्रा 7.9 से 9.9 प्रतिशत तक होती है। पूर्ण विकसित एवं 10 वर्ष से अधिक आयु वाले वृक्षों से सामान्यतः 70 से 130 किलोग्राम तक वार्षिक फल उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

(8) **मेहरूनः** यह एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक किस्म है, जिसकी खेती विशेष रूप से गुजरात, महाराष्ट्र तथा मध्य भारत के अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में व्यापक रूप से की जाती है। इसकी पत्तियों में क्लोरोफिल की मात्रा अन्य प्रमुख व्यावसायिक किस्मों की तुलना में अधिक (लगभग 28.82 SPAD) पाई जाती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की दक्षता बढ़ती है और वृक्ष तीव्र धूप तथा प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी बेहतर प्रदर्शन करते हैं। मेहरून एक मध्य–ऋतु की किस्म है, जिसके फल सामान्यतः दिसंबर से फरवरी के बीच परिपक्व होते हैं। इसकी एक विशिष्ट विशेषता फूल आने से फल तुड़ाई तक की अत्यंत कम अवधि है, जो औसतन लगभग 102 दिनों की होती है, जबकि वार्षिक छंटाई से लेकर फसल प्राप्ति तक का समय लगभग 184 दिनों का होता है। इस किस्म के फलों का छिलका पतला, चिकना तथा पकने पर हल्के पीले से नारंगी–भूरे रंग का आकर्षक स्वरूप धारण कर लेता है। प्रारंभिक परिपक्व अवस्था में फल का गूदा कुरकुरा एवं रसयुक्त होता है, जबकि पूर्ण पकने पर यह अधिक मधुर, मुलायम तथा हल्का स्पंजी बन जाता है। मेहरून किस्म की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता बेर फल मक्खी के प्रति इसकी सहनशीलता है, जो बेर की खेती में सबसे विनाशकारी कीटों में से एक मानी जाती है। इसकी शीघ्र परिपक्वता के कारण फल मक्खी की अधिकतम सक्रियता से पहले ही फसल की तुड़ाई हो जाती है, जिससे कीट प्रकोप और फल क्षति में कमी आती है। उपयुक्त प्रबंधन वाले बागों में एक परिपक्व वृक्ष से प्रतिवर्ष लगभग 60 से 100 किलोग्राम तक फल प्राप्त किए जा सकते हैं।

पछेती किस्में: ये किस्में सामान्यतः दिसंबर से जनवरी–फरवरी तक पकती हैं। देर से पकने वाली किस्मों का प्रमुख लाभ यह है कि इनका फलन एवं तुड़ाई काल लंबा होता है, जिससे बाजार में अधिक समय तक फल उपलब्ध होते रहते हैं।

(9) **उमरानः** यह भारत की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं व्यावसायिक रूप से सफल किस्मों में से एक है। इस किस्म के वृक्ष मध्यम से बड़े आकार (5–6 मीटर) के होते हैं तथा इनमें घनी, झुकी हुई शाखाएँ विकसित होती हैं, जो कई बार भूमि के निकट तक पहुँच जाती हैं। वृक्ष में कांटों की संख्या अपेक्षाकृ त कम होती है और उपस्थित कांटे प्रायः मुड़े हुए आकार के होते हैं। इसकी पत्तियाँ अंडाकार–आयताकार (ovate & oblong) होती हैं, जिनके किनारे आधार से शीर्ष तक स्पष्ट रूप से दंतुर (मततंजमक) होते हैं। सामान्यतः फल की लंबाई 4.18 से 4.50 सेमी तथा व्यास 3.20 से 3. 54 सेमी तक होता है। एक फल का औसत भार 24 से 45 ग्राम के बीच पाया जाता है, जबकि अनुकूल परिस्थितियों में यह 55 ग्राम से अधिक भी हो सकता है। फल का गूदा अत्यधिक विकसित होता है और गूदा–गुठली अनुपात लगभग 19.2:1 से 20:1 तक पाया जाता है, जिसके कारण फल के कुल भार का लगभग 94 प्रतिशत भाग खाद्य गूदे के रूप में उपलब्ध होता है। फल का गूदा कुरकुरा, रसदार तथा उत्कृष्ट गुणवत्ता वाला होता है और पूर्ण परिपक्वता पर गहरे सुनहरे अथवा चॉकलेटी–भूरे रंग का आकर्षक स्वरूप धारण कर लेता है। इसके फलों में कुल घुलनशील ठोस

पदार्थ की मात्रा सामान्यतः 12.2 से 14.0 ब्रिक्स तक होती है, जबकि विटामिन–सी (एस्कॉर्बिक अम्ल) की मात्रा 90.3 से 110.0 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम ताजे गूदे तक पाई जाती है, जो इसे पोषणीय दृष्टि से अत्यंत समृद्ध बनाती है। कुल शर्करा की मात्रा लगभग 8.8 से 9.5 प्रतिशत तथा अम्लता केवल 0.20 से 0.28 प्रतिशत होने के कारण इसके फल अत्यंत मधुर एवं संतुलित स्वाद वाले होते हैं। यह किस्म उच्च उत्पादकता के लिए भी प्रसिद्ध हैय कलमयुक्त युवा वृक्षों से लगभग 37 से 49 किलोग्राम फल प्राप्त किए जा सकते हैं, जबकि पूर्ण विकसित 7–12 वर्ष पुराने वृक्षों से 150 से 220 किलोग्राम तक वार्षिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

(10) **इलायची**: यह किस्म मध्य–ऋतु में परिपक्व (90–120) होने वाली बेर किस्म है। इसके वृक्ष सीधे एवं सशक्त वृद्धि वाले होते हैं और सामान्यतः 3 से 5 मीटर तक की ऊँचाई प्राप्त करते हैं। इसकी पत्तियाँ हृदयाकार एवं चौड़ी होती हैं, जिनका लंबाई–चौड़ाई अनुपात लगभग 1.2 पाया जाता है। पत्ती का शीर्ष कुंद (obtuse) तथा आधार समतल एवं चौड़ा होता है, जबकि दोनों सतहें हल्के हरे रंग की होती हैं। पर्णवृन्त (petiole) भी हल्के हरे रंग का होता है तथा इसकी औसत लंबाई लगभग 1.8 सेमी होती है। उत्तर भारत की परिस्थितियों में पुष्पन सामान्यतः दिसंबर से जनवरी के बीच होता है, जबकि फल मई से जून के दौरान परिपक्व होते हैं। इसके फल चपटे गोलाकार होते हैं तथा उनका रंग पीताभ–हरित होता है। फल का स्टाइलर सिरा समतल एवं धारियुक्त होता है, जबकि डंठल वाला सिरा गोलाकार एवं स्पष्ट उभरी हुई धारियों से युक्त होता है। फल का छिलका चिकना तथा हल्की धारियों वाला होता है। औसतन प्रत्येक फल का भार लगभग 8.5 ग्राम होता है, जो अन्य प्रमुख किस्मों जैसे पन्ना एवं गोला की तुलना में अपेक्षाकृत कम है। गूदे एवं गुठली का अनुपात लगभग 18.4 होने के कारण फल में पर्याप्त खाद्य भाग उपलब्ध रहता है। इसका गूदे में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ लगभग 20 ब्रिक्स तथा विटामिन–सी की मात्रा लगभग 138 मि.ग्रा. प्रति 100 ग्राम गूदे में पाई जाती है, जो इसे अत्यंत पौष्टिक बनाती है। फलों की भंडारण क्षमता लगभग 4–5 दिनों तक रह जाती है। प्रति फल वृक्ष 30–43 कि.ग्रा. तक की उपज प्राप्त होती है।

(11) **मुंडिया**: इस किस्म के वृक्ष अर्ध–सीधे (semi erect) वृद्धि स्वरूप वाले होते हैं। इसकी पत्तियाँ लंबी–अण्डाकार (oblong) होती हैं तथा उनका लंबाई–चौड़ाई अनुपात लगभग 1.5 पाया जाता है। पत्ती का शीर्ष उपनुकीला (subacute) होता है, किनारे हल्के वक्राकार होते हैं तथा आधार क्रमशः संकरा होता जाता है। पर्णवृन्त लगभग 1.6 सेमी लंबा होता है, जिसकी ऊपरी (dorsal) सतह हल्के हरे रंग की बैंगनी आभा लिए होती है, जबकि निचली (ventral) सतह हल्के हरे रंग की होती है। इस किस्म में पुष्पों का पूर्ण प्रस्फुटन सामान्यतः दोपहर 1:00 बजे से 2:30 बजे के बीच होता है। इसके फल प्रारंभिक अवस्था में ही परिपक्व हो जाते हैं तथा उनका आकार अण्डाकार–घंटीकार (oblong bell shaped) होता है। प्रत्येक फल का औसत भार लगभग 39.9

ग्राम होता है। फल का स्टाइलर सिरा गोलाकार होता है। इसका गूदा श्वेत, कोमल एवं रसयुक्त होता है तथा इसमें कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा लगभग 19.9 ब्रिक्स होती है। यह किस्म ताजे उपभोग के लिए एक उत्कृष्ट बेर किस्म मानी जाती है।

अन्य किस्में:

किस्म	परिपक्वन श्रेणी	परिपक्वन अवधि (दिनों में)	उपज (कि.ग्रा. प्रति पौध)	कुल घुलनशील ठोस (^{0}ब्रिक्स)	अम्लता (%)
दूधिया	मध्यकालीक	150 – 180	70–85	18–20	0.25 – 0.35
थार सेविका	अगेती	130 – 150	80–110	22–24	0.20 – 0.30
थार भुवराज	अगेती	135 – 150	75–100	20–22	0.25 – 0.35
नरेन्द्र बेर –1	मध्यकालीक	150 – 170	85–115	19–21	0.28 – 0.36
नरेन्द्र बेर –2	अगेती–मध्यकालीक	145 – 165	75–105	18–20	0.30 – 0.38

प्रवर्धनः

भारत के विभिन्न भागों में बहुतायत पुराने बाग स्थापित है जो कि बीज द्वारा प्रवर्धित पौध सामग्री से लगाये गये थे। परन्तु इस विधि से तैयार बेर के फल वृक्षों में फलों का आकार छोटा होना और फलों की गुणवत्ता विपणि मांग के अनुरुप नही होता। अतः उचित यही है कि बेर की पौध सामग्री वानस्वतिक प्रवर्धन द्वारा तैयार की जावे। **वानस्वतिक प्रवर्धन की विधियाँ निम्नानुसार हैः**

कटिंगः बेर में कटिंग द्वारा प्रवर्धनएक महत्वपूर्ण तकनीक है, जिसमें मातृ वृक्ष के तने या शाखा के भागों को उपयुक्त परिस्थितियों में जड़ विकसित करने के लिए प्रेरित किया जाता है। बीज द्वारा प्रवर्धन की तुलना में यह विधि आनुवंशिक शुद्धता, एकरूपता तथा शीघ्र फलन सुनिश्चित करती है, किंतु बेर को सामान्यतः कठिन–जड़ित (recalcitrant) फलों की श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि इसकी शाखाओं में प्राकृतिक रूप से अपस्थानिक जड़ों के निर्माण की क्षमता सीमित होती है। प्रभावी जड़ निर्माण (rooting) को प्रोत्साहित करने तथा अधिकतम अवशोषण सतह क्षेत्र उपलब्ध कराने के लिए शीर्षीय कटिंग्स (terminal cuttings) के आधार भाग पर तिरछा कट लगाया गया। कलमों के आधार भाग (1–2 सेमी गहराई तक) को इंडोल–3–ब्यूटिरिक अम्ल के 1000, 1500 एवं 2000 पीपीएम सांद्रताओं में से किसी एक घोल में 5 मिनट तक डुबोया जाता है, जिसके बाद उन्हें 5 मिनट तक वायु में सुखाते है । इसके बाद इंडोल–3–ब्यूटिरिक अम्ल उपचारित कटिंग्स को

विभिन्न जड़न माध्यमों (rooting media) जैसे कोकोपीट, वर्मीकुलाइट तथा बुरादे (sawdust) से भरी प्रो–ट्रे में एक गांठ (node) की गहराई तक रोपित किया जाता है। कटिंग्स को स्थिर रखने, वायु रिक्तियों (air pockets) को समाप्त करने तथा कटिंग्स के आधार भाग और नम जड़न माध्यम के बीच उचित संपर्क सुनिश्चित करने के लिए माध्यम/मीडिया को कलम के चारों ओर हल्के दबाव से सघन किया जाता है। फफूंदजनित संक्रमण से बचाव हेतु कलमों के ऊपरी खुले सिरों पर फफूंदनाशी का पेस्ट लगा सकते है। इसके पश्चात प्रो–ट्रे को मिस्ट चौंबर में रखा जाता है तांकि कलमों में जड़ निर्माण के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध हो सके। 20 से 30 दिन बाद जड़ें आना शुरु हो जाती है।

स्टूलिंग: भारतीय बेर में स्टूलिंग प्रवर्धन एक पारंपरिक किंतु पौध–शारीरिक दृष्टि से अत्यंत परिष्कृत वानस्पतिक प्रवर्धन विधि है, जिसमें चयनित मातृ पौधे से निकलने वाली आधारीय शाखाओं (suckers को मूल पौधे से जुड़े रहने की अवस्था में ही उनकी जड़ निर्माण क्षमता विकसित करने हेतु उनके आधार के चारों ओर मिट्टी अथवा अन्य जड़न माध्यम का टीला (mound) बनाकर ढक दिया जाता है। इस प्रक्रिया की शुरुआत वांछित किस्म के स्वस्थ, सशक्त एवं रोगमुक्त मातृ पौधे को जैविक पदार्थों से समृद्ध, अच्छी तरह तैयार की गई बलुई दोमट मिट्टी की स्टूल बेड में स्थापित करने से होती है। सक्रिय वृद्धि काल, जो सामान्यतः वसंत ऋतु के अंत से ग्रीष्म ऋतु के प्रारंभ तक होता है, में पौधे के ऊपरी भाग को भूमि सतह से लगभग 15–30 सेमी ऊँचाई पर काट दिया जाता है। इससे आधारीय कलिकाएँ सक्रिय हो जाती हैं तथा अनेक नई शाखाएँ (suckers) निकलती हैं। जब ये शाखाएँ लगभग 20–40 सेमी लंबाई प्राप्त कर लेती हैं, तब उनके आधार के चारों ओर अच्छी वायु संचार क्षमता एवं नमी धारण करने वाले माध्यम, जैसे गोबर की खाद (FYM) मिश्रित बलुई दोमट मिट्टी अथवा रेत, कोकोपीट एवं परलाइट के मिश्रण का उपयोग करते हुए 15–25 सेमी ऊँचा टीला बनाया जाता है, जिससे प्रत्येक शाखा का निचला 10–15 सेमी भाग पूर्णतः ढक जाता है। उपयुक्त नमी, पर्याप्त वायुसंचार तथा 25–30 °C तापमान जैसी अनुकूल परिस्थितियों में दबे हुए आधारीय भाग को कम प्रकाश प्राप्त होता है, जिससे पौधे के हार्मोनिक संतुलन में परिवर्तन होता है। इसके परिणामस्वरूप मातृ पौधे से प्राकृतिक ऑक्सिन तथा कार्बोहाइड्रेट्स का संचय उस क्षेत्र में बढ़ जाता है, जो कोशिका विभाजन, जड़ प्रारूप (root primordia) के निर्माण तथा अपस्थानिक जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करता है। सामान्यतः 3–6 सप्ताह के भीतर जड़ों का प्रारंभिक विकास आरंभ हो जाता है तथा 8–12 सप्ताह में एक सुदृढ़ एवं विकसित जड़ तंत्र बन जाता है। जड़ों के सफल विकास की पुष्टि होने पर जड़युक्त शाखाओं को मातृ पौधे से आधार भाग से अलग कर दिया जाता है। इसके बाद वाष्पोत्सर्जन को कम करने के लिए उनकी छंटाई की जाती है तथा आवश्यकता

अनुसार हल्के फफूंदनाशी और कम सांद्रता वाले Indole – 3 – Butyric Acid से उपचारित किया जाता है। तत्पश्चात इन्हें पॉलीबैग या नर्सरी क्यारियों में प्रतिरोपित किया जाता है।

चश्मा चढ़ाना / मुकुलन विधिः बेर के प्रवर्धन की विभिन्न विधियों में बडिंग सबसे अधिक प्रचलित तथा व्यावसायिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण तकनीक मानी जाती है। बेर के गुणन के लिए टी–बडिंग (शील्ड बडिंग), आई–बडिंग, पैच बडिंग, रिंग बडिंग, चिप बडिंग, फॉर्कर्ट बडिंग तथा फ्लूट बडिंग जैसी अनेक विधियों का मानकीकरण किया गया है। इनमें शील्ड बडिंग (टी–बडिंग) एवं पैच बडिंग के द्वारा अच्छे परिणाम मिलते है। बडिंग की सफलता मुख्यतः तापमान, सापेक्ष आर्द्रता तथा बडिंग सामग्री की शारीरिक अवस्था पर निर्भर करती है। इसी कारण विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों में बडिंग का उपयुक्त समय अलग–अलग होता है। मध्यप्रदेश व उत्तर प्रदेश में जून माह को बडिंग के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है। टी–बडिंग व आई बडिंग, बेर के वानस्पतिक प्रवर्धन में मुकुलन की सबसे अधिक प्रचलित एवं सफल विधि है। इस तकनीक में चयनित उन्नत किस्म की एक कलिका (बड) को पेंसिल की मोटाई वाले मूलवृन्त पर टी अथवा आई आकार के चीरे की सहायता से स्थापित किया जाता है। यह विधि मातृ पौधे के आनुवंशिक गुणों को सुरक्षित बनाए रखती है तथा बाग में एकरूपता एवं शीघ्र फलन सुनिश्चित करती है। मूलवृन्त तैयार करने के लिए बेर के बीजों को जुलाई–अगस्त माह में अच्छी तरह तैयार की गई नर्सरी क्यारियों में 30   30 सेमी की दूरी पर बोया जाता है। जब पौधे लगभग 6–10 मि.मी. व्यास (पेंसिल मोटाई) प्राप्त कर लेते हैं तथा उनमें सक्रिय वृद्धि और पर्याप्त रस प्रवाह होता है, तब उन्हें बडिंग के लिए उपयुक्त माना जाता है। कलिका–डालियाँ (bud sticks) वांछित किस्मों, जैसे थार सेविका, नरेन्द्र बेर–1 अथवा गोला, के स्वस्थ एवं सशक्त मातृ पौधों से ली जाती हैं। सामान्यतः मध्य आयु की शाखाओं से प्राप्त कलिकाएँ अधिक उपयुक्त मानी जाती हैं। नमी की हानि रोकने के लिए इन्हें पॉलीथीन थैलियों में सुरक्षित रखा जाता है। बडिंग की क्रिया मूलवृन्त के तने पर भूमि सतह से लगभग 15–20 सेमी ऊँचाई पर की जाती है। इसके लिए छाल पर लगभग 1 सेमी लंबा क्षैतिज कट लगाया जाता है तथा उसके मध्य से 2–3 सेमी लंबा ऊर्ध्वाधर कट नीचे की ओर दिया जाता है, जिससे टी–आकार या आई आकार का चीरा बन जाता है। इस प्रक्रिया में भीतरी जाइलम भाग को क्षति नहीं पहुँचाई जाती। इसके बाद छाल के दोनों फ्लैपों को सावधानीपूर्वक ऊपर उठाया जाता है। इस कलिका को मूलवृन्त के टी–आकार या आई आकार के चीरे में सावधानीपूर्वक प्रविष्ट कराया जाता है और छाल के फ्लैप पुनः उसके ऊपर बंद

कर दिए जाते हैं। इसके पश्चात जोड़ वाले भाग को पॉलीथीन पट्टी या बडिंग टेप से मजबूती से बाँध दिया जाता है, जबकि कलिका को खुला रखा जाता है ताकि वह श्वसन कर सके तथा संक्रमण से सुरक्षित रहे। टी–बडिंग की सफलता उस अवधि में अधिक होती है जब पौधों में रस प्रवाह सक्रिय रहता है। सामान्यतः जून से फरवरी तक का समय इसके लिए उपयुक्त माना जाता है, हालांकि विभिन्न क्षेत्रों में सफलता का स्तर जलवायु परिस्थितियों के अनुसार भिन्न हो सकता है। लगभग 15–25 दिनों बाद कलिका की स्थिति का निरीक्षण किया जाता है। यदि कलिका हरी एवं फूली हुई दिखाई दे, तो बडिंग सफल मानी जाती है। कलिका के अंकुरित होने के बाद उसके ऊपर स्थित मूलवृन्त के भाग को काट दिया जाता है, जिससे सभी पोषक तत्व नई वृद्धि की ओर निर्देशित हो सकें। बडिंग के बाद पौधों की नियमित सिंचाई, आंशिक छायांकन तथा दीमक नियंत्रण जैसी देखभाल आवश्यक होती है।

बाग स्थापना के लिए भूमि की तैयारीः

सफल एवं उत्पादक फलोद्यान की स्थापना के लिए भूमि की वैज्ञानिक तैयारी अत्यंत आवश्यक है, जिससे पौधों की जड़ों के विकास, जल प्रबंधन तथा दीर्घकालीन उत्पादकता के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ सुनिश्चित की जा सकें। इस प्रक्रिया का प्रारंभ स्थलाकृति सर्वेक्षण से किया जाता है। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य जल निकास की प्राकृतिक दिशा का निर्धारण करना, नीची एवं ऊँची सतहों की पहचान करना तथा जल निकास नालियों एवं उठी हुई क्यारियों की उपयुक्त स्थिति निर्धारित करना होता है। इससे खेत में जलभराव की समस्या को रोका जा सकता है तथा अतिरिक्त वर्षा जल का प्रभावी निष्कासन सुनिश्चित होता है। इसके पश्चात भूमि की 12–18 इंच गहराई तक दो बार गहरी जुताई की जाती है। गहरी जुताई से मिट्टी की कठोर परत (हार्ड पैन) टूट जाती है, जो कि जड़ों के विकास को सुनिश्चित करता है तथा नमी को भूमि में लम्बे समय तक संरक्षित कर पाने में सहायक होता है। साथ ही, मिट्टी में गहराई में छिपे कीट एवं हानिकारक जीव प्रतिकूल वातावरण के संपर्क में आने से नष्ट हो जाते हैं, जिससे उनकी संख्या में कमी आती है।

गहरी जुताई के बाद मिट्टी के बड़े ढेलों को रोटावेटर की सहायता से तोड़ा जाता है। यह कार्य मिट्टी में नमी कम होने पर किया जाता है, जिससे भूमि की बनावट में सुधार होता है तथा खेत समतलीकरण एवं रोपण के लिए उपयुक्त बन जाता है। इसके बाद भूमि का समतलीकरण किया जाता है ताकि असमतल

स्थानों पर जल एकत्रित न हो। अतिरिक्त जल के निकास हेतु लगभग 0.5 प्रतिशत ढाल बनाए रखना उपयुक्त माना जाता है। यह व्यवस्था जलभराव को रोकने के साथ–साथ मृदा अपरदन को भी कम करती है। समतलीकरण के बाद लगभग 2 फीट गहरी एवं 2–3 फीट चौड़ी मुख्य जल निकास नाली (ड्रेनेज ट्रेंच) बनाई जाती है। यह नाली बाग क्षेत्र से अतिरिक्त जल को एकत्रित कर बाहर निकालने का कार्य करती है तथा जड़ों के आसपास संतुलित नमी बनाए रखने में सहायता करती है। रोपण से कम–से–कम 15 दिन पूर्व उठी हुई क्यारियाँ (Raised Bed) तैयार की जाती हैं। ये भूमि की सतह से ऊँची बनाई गई मिट्टी की पट्टियाँ होती हैं, जिन पर पौधों का रोपण किया जाता है। उठी हुई क्यारियाँ जल निकास को बेहतर बनाती हैं, मिट्टी में वायु संचार बढ़ाती हैं, जड़ों के विकास को प्रोत्साहित करती हैं तथा जल एवं पोषक तत्वों के उपयोग की दक्षता में वृद्धि करती हैं। इसके अतिरिक्त, ये मल्चिंग, सिंचाई प्रबंधन एवं खरपतवार नियंत्रण जैसे कृषि कार्यों को भी सरल बनाती हैं। सामान्यतः इनकी ऊँचाई 12–18 इंच तथा चौड़ाई 30–36 इंच रखी जाती है, जबकि जलभराव वाले क्षेत्रों में अधिक ऊँचाई वाली क्यारियाँ बनाई जाती हैं। क्यारियों को रिजर की सहायता से तैयार कर हल्की सिंचाई देकर मिट्टी को स्थिर एवं सघन बनाया जाता है।

पौध रोपण एवं दूरीः

बेर की रोपण दूरी जलवायु, उपलब्ध सिंचाई सुविधा तथा किस्म की वृद्धि प्रकृति पर निर्भर करती है। सामान्यतः वर्षा आधारित क्षेत्रों में 6 x 6 मीटर तथा सिंचित अथवा अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में 8 x 8 मीटर की दूरी उपयुक्त मानी जाती है। यदि बाग स्थापना वर्गाकार प्रणाली में की जा रही है तो सबसे उपयुक्त 7.5 x 7.5 मीटर की दूरी होती है। मध्य भारत के अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में रोपण के लिए जुलाई–अगस्त का मानसूनी मौसम सर्वाधिक अनुकूल माना जाता है। पौध रोपण हेतु उठी हुई क्यारियों पर सामान्यतः 60 x 60 x 60 सेमी आकार के गड्ढे तैयार किए जाते हैं, जिनमें मिट्टी एवं अच्छी तरह विघटित हुई गोबर की खाद का मिश्रण भरकर उपयुक्त पौधे लगाए जाते हैं। विभिन्न किस्मों के लिए दूरी में कुछ भिन्नता पाई जाती है, जैसे कैथली किस्म के लिए 8 x 3 मीटर तथा बनारसी किस्म के लिए 8 x 4 मीटर की दूरी उपयुक्त पाई गई है। बड़े स्तर पर बाग स्थापना के लिए ट्रैक्टर चालित पोस्ट–होल डिगर का उपयोग अधिक प्रभावी एवं किफायती सिद्ध होता है, क्योंकि इसकी सहायता से प्रतिदिन सैकड़ों गड्ढे तैयार किए जा सकते हैं।

सधाई एवं छंटाईः

सधाईः

बेर के वृक्षों में प्रारंभिक 2–3 वर्षों के दौरान उचित सधाई (Training) अत्यंत आवश्यक होता है, क्योंकि इसी अवधि में वृक्ष का मजबूत एवं संतुलित ढाँचा विकसित होता है। भारतीय बेर की शाखाएँ क्षैतिज तथा नीचे की ओर फैलने लगती हैं। यदि प्रारंभिक अवस्था में वृक्षों को उचित सधाई न दिया जाए, तो वे अत्यधिक झाड़ीदार एवं फैलावदार स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं तथा उनमें लंबी एवं पतली शाखाओं का विकास ज्यादा होने लगता है। इसके अतिरिक्त, तने के आधार से अनेक शाखाएँ निकलने लगती हैं, जिससे वृक्ष के भीतर अत्यधिक घनत्व उत्पन्न हो जाता है। ऐसी परिस्थितियाँ कीटों एवं रोगों के पनपने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं, परिणामस्वरूप वृक्षों की आयु एवं उत्पादकता दोनों प्रभावित होती हैं। अधिकांश व्यावसायिक बेर किस्मों की वृद्धि फैलावदार होती है, इसलिए रोपण के बाद प्रारंभिक दो वर्षों तक सहारा देना विशेष रूप से लाभकारी माना जाता है। प्रथम वर्ष में पौधे तीव्र वृद्धि करते हैं तथा मुख्य तने से अनेक पार्श्व शाखाएँ निकलती हैं। इस अवस्था में भूमि सतह से लगभग 75 सेमी ऊँचाई तक विकसित होने वाली सभी पार्श्व शाखाओं को हटा देना चाहिए, ताकि एक सीधा, स्वस्थ एवं सशक्त मुख्य तना विकसित हो सके। इसके बाद मुख्य तने पर चारों दिशाओं में समान रूप से स्थित 3 से 5 स्वस्थ एवं सुदृढ़ द्वितीयक शाखाओं का चयन किया जाता है, जो आगे चलकर वृक्ष का स्थायी ढाँचा (framework) बनाती हैं। इस प्रकार वैज्ञानिक सधाई द्वारा वृक्ष में संतुलित वृद्धि, बेहतर प्रकाश संचरण, सुगम प्रबंधन तथा उच्च उत्पादकता सुनिश्चित की जा सकती है।

छंटाईः

बेर में छंटाई एक महत्वपूर्ण उद्यानिकी क्रिया है, जिसका उद्देश्य वृक्ष की संरचना को संतुलित रखना, नई फलधारी शाखाओं का विकास प्रोत्साहित करना तथा उत्पादन एवं फल गुणवत्ता में सुधार करना है। चूँकि बेर में पुष्प एवं फल मुख्यतः वर्तमान मौसम में विकसित नई शाखाओं की पत्ती–कक्षाओं में बनते हैं, इसलिए नियमित छंटाई, सतत एवं उच्च उत्पादन के लिए अनिवार्य मानी जाती है। पुरानी एवं अनुपयोगी शाखाएँ समय के साथ अपनी फलधारण क्षमता खो देती हैं, अतः उनके निष्कासन से पौधे के पोषक तत्व, कार्बोहाइड्रेट तथा वृद्धि नियामक पदार्थ नई एवं उत्पादक शाखाओं की ओर पुनर्निर्देशित होते हैं। इससे प्रकाश प्रवेश, वायु संचार तथा प्रकाश संश्लेषण की दक्षता बढ़ती है, साथ ही कीट एवं रोगों के प्रकोप में भी कमी आती है। मई के मध्य से जून के प्रारंभ तक का समय छंटाई के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होता है। इस अवधि में की गई छंटाई से नई शाखाओं का तीव्र विकास होता है तथा पुष्पन एवं फलन बेहतर होता है। विषेश रुप से 15 मई के आस पास की गई छंटाई से अधिक शाखाएँ, शीघ्र पुष्पन, उच्च फल भार, अधिक टीएसएस, विटामिन–सी तथा सर्वाधिक उपज प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त, जनवरी–फरवरी में फल तुड़ाई के बाद हल्की सुधारात्मक छंटाई करके सूखी, रोगग्रस्त एवं थकी हुई

फलधारी शाखाओं को हटाया जा सकता है। सामान्यतः कुल वृक्ष छत्रक का लगभग 20–30 प्रतिशत भाग हटाना सर्वोत्तम माना जाता है। इस स्तर की मध्यम छंटाई से संतुलित वृद्धि एवं पर्याप्त फलन प्राप्त होता है। अत्यधिक छंटाई ($> 40\%$) केवल पुराने या उपेक्षित वृक्षों के पुनरुद्धार (rejuvenation) हेतु की जाती है, जबकि हल्की छंटाई ($< 15\%$) युवा वृक्षों अथवा सुव्यवस्थित बागों में रखरखाव के लिए उपयुक्त होती है। पुराने बेर के वृक्षों में 50 प्रतिशत तक छँटाई करने पर उपज में बढ़ोत्तरी देखी गई है। बेर में प्रमुख छंटाई तकनीकों में हेडिंग बैक, थिनिंग आउट, पुनरुद्धार छंटाई तथा फलधारी शाखाओं का प्रबंधन शामिल हैं। हेडिंग बैक में लंबी शाखाओं के अग्र भाग को काटकर पार्श्व शाखाओं की वृद्धि को प्रोत्साहित किया जाता है। थिनिंग आउट के अंतर्गत आपस में रगड़ खाने वाली, रोगग्रस्त या भीड़ बढ़ाने वाली शाखाओं को उनके उद्गम स्थल से हटा दिया जाता है। पुनरुद्धार छंटाई पुराने एवं कम उत्पादक वृक्षों में की जाती है। छंटाई के बाद संतुलित पोषण एवं सिंचाई प्रबंधन आवश्यक है जिस हेतु N: P: K उर्वरकों के साथ बोरॉन एवं जिंक जैसे सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग नई शाखाओं की वृद्धि तथा पुष्प कलिकाओं के विकास को बढ़ावा देता है। पर्याप्त नमी बनाए रखने से नई वृद्धि तीव्र होती है और पौधे तनाव से बचते हैं।

सिंचाईः

बेर गहरी मुख्य जड़ प्रणाली तथा मरुस्थलीय प्रकृति का होता है। जिस कारण एक बार स्थापित हो जाने के बाद इसे अपेक्षाकृत कम देखभाल एवं सिंचाई की आवश्यकता होती है। नवीन रोपित (1 से 3 वर्ष की आयु तक) पौधों में मानसून के अतिरिक्त अन्य मौसम में नियमित अंतराल में सिंचाई की आवश्यकता होती है। शीतकालीन मौसम में 18–25 दिन के अंतराल पर सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार ग्रीष्म ऋतु में 5–7 दिनों के अंतराल पर सिंचाई देना उपयुक्त होता है। जब पौधे फलन की आयु में पहुँच जाये तब सितंबर–अक्टूबर में पुष्पन आरंभ होता है और इस समय सिंचाई से बचना चाहिए, क्योंकि अधिक नमी के कारण पुष्प झड़ने की संभावना बढ़ जाती है। फलों का सेटिंग कार्य सामान्यतः नवंबर के प्रथम पखवाड़े तक पूर्ण हो जाता है। फल विकास की अवस्था में, विशेषकर नवंबर से फरवरी के बीच, सिंचाई करने से फलों का आकार, गुणवत्ता तथा कुल उत्पादन उल्लेखनीय रूप से बढ़ता है। यद्यपि बेर बिना सिंचाई के भी फल दे सकता है, फिर भी मासिक अंतराल पर सिंचाई करने से फल झड़न में कमी आती है तथा उपज में वृद्धि होती है। जल संरक्षण एवं उच्च उत्पादकता की दृष्टि से ड्रिप सिंचाई अत्यंत प्रभावी है। विभिन्न शोधों में ड्रिप सिंचाई से वर्षा आधारित खेती की तुलना में 2.8 से 4 गुना तक अधिक उपज प्राप्त हुई, जबकि 60 प्रतिशत से अधिक जल की बचत भी दर्ज की गई। उचित ड्रिप सिंचाई प्रबंधन से जल उपयोग दक्षता में वृद्धि होती हैं।

खरपतवार नियंत्रणः

बेर की सफल खेती में खरपतवार नियंत्रण बहुत ही महत्वपूर्ण है, विशेषकर शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में जहाँ जल की कमी होती है। इस हेतु मल्चिंग और विभिन्न प्रकार के रसायनिक खरपतवारनाशी का उपयोग करते है। मल्चिंग के अंतर्गत पौधों के चारों ओर मृदा की सतह को जैविक अथवा अजैविक पदार्थों से ढक दिया जाता है। जैविक मल्च जैसे धान का पुआल, भूसा, चावल की भूसी, मूंगफली के छिलके, सूखी पत्तियाँ, कम्पोस्ट तथा गोबर की खाद व्यापक रूप से उपयोग किए जाते हैं। इनका 5–10 सेमी मोटी परत के रूप में पौधे के चारों ओर 1–1.5 मीटर की परिधि में प्रयोग किया जाता है। वहीं अजैविक मल्च में काली पॉलीथीन, सफेद पॉलीथीन तथा लैंडस्केप फैब्रिक जैसे दीर्घकालीन तरीकों का उपयोग खरपतवार नियंत्रण के लिए करते है। खरपतवार नियंत्रण के लिए रसायन जैसे ग्लाइफोसेट 41 % SL एवं पैराक्वाट डाईक्लोराइड 24 % SL का उपयोग किया जा सकता है। हाथ से निराई–गुड़ाई तथा वृक्षों के चारों ओर थालों की सफाई छोटे एवं मध्यम बागों के लिए प्रभावी उपाय हैं। कतारों के बीच कल्टीवेटर अथवा रोटावेटर द्वारा जुताई कर खरपतवारों की संख्या कम की जा सकती है।

खाद एवं उर्वरकः

नाइट्रोजन, फॉस्फोरस तथा पोटाश जैसे प्रमुख पोषक तत्वों की कमी बेर की वृद्धि एवं फलन क्षमता को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। इन आवश्यक पोषक तत्वों के अपर्याप्त स्तर के कारण नई शाखाओं की वृद्धि धीमी हो जाती है, पत्तियों का विकास सीमित हो जाता है तथा पार्श्व शाखाओं का निर्माण कम हो जाता है। प्रत्येक पूर्ण विकसित वृक्ष को जुलाई माह में 40–50 किलोग्राम गोबर की विघटित खाद तथा फल लगने के बाद अक्टूबर में 0.75 किलोग्राम अमोनियम सल्फेट देना लाभकारी होता है। सामान्यतः 3 वर्ष के बाद व पूर्ण विकसित फलवृक्ष में 400 ग्राम नत्रजन, 250 ग्राम फास्फोरस और 200 ग्राम पोटैशियम प्रति वर्ष प्रति पौध दिया जाना चाहिए। उपर्युक्त के स्थान उर्वरक की अनुशंसित मात्रा का 50 प्रतिशत रासायनिक स्त्रोतों एवं 50 प्रतिशत भेड़ के गोबर से बनी खाद के देने पर उपज सर्वाधिक मिलती है। जैविक खेती एवं मृदा स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग भी अत्यंत प्रभावी होता है। प्रारंभिक वृद्धि अवस्था में तीन माह तक प्रति पौधा 2 किलोग्राम वर्मी कम्पोस्ट का नियमित प्रयोग करने पौधे की वृद्धि अच्छी होती है और मृदा की उर्वरता एवं संरचना में भी सुधार होता है, जिससे दीर्घकालीन परिणाम के रुप में उत्पादकता को बढ़ावा मिलता है।

बेर में लगने वाले प्रमुख कीट एवं उनका निदान

(1) फल मक्खीः इसका प्रकोप सामान्यतः सितंबर माह में फल लगने के साथ प्रारंभ हो जाता है। वयस्क मादा मक्खी अपने अंडप्रक्षेपक (ovipositor) की सहायता से विकसित होते फलों में अंडे देती है। 2–5 दिनों के भीतर अंडों से लार्वा निकलते हैं, जो फल के गूदे को खाकर क्षति पहुँचाते हैं। गोला, गोला चुंगांव नं. 3, कैथली तथा ककरोला गोला किस्में फल मक्खी के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है।

सौजन्यः अमिनि एवं अन्य, 2023

नियंत्रणः

- प्रतिरोधी किस्में जैसे चीनी, सनौर–1, सफेदा इलायची, मिर्चिया, जेड जी–3 तथा उमरान का चुनाव करना।
- फल मक्खी के प्रभावी नियंत्रण हेतु समेकित कीट प्रबंधन अपनाना।

- ग्रीष्मकाल में बाग की गहरी जुताई करनी चहिए ताकि मिट्टी में छिपे प्यूपा को धूप एवं पक्षियों नष्ट किया जा सके।
- गिरे हुए एवं संक्रमित फलों को नियमित रूप से एकत्र कर नष्ट करना चाहिए, जिससे कीट का जीवन चक्र बाधित हो सके।
- रासायनिक नियंत्रण के लिए लैम्बडा सायहैलोथ्रिन 2 मि.ली. प्रति लीटर पानी के साथ मिलाकर 7 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें। इसके अलावा डेल्टामेथ्रिन 0.1 प्रतिशत का छिड़काव भी किया जा सकता है।

(2) फल छेदकः

बेर फल बेधक एक अत्यंत विनाशकारी कीट है, जो भारत के अधिकांश बेर उत्पादक क्षेत्रों में पाया जाता है। इसके प्रकोप से फल उत्पादन में 70 प्रतिशत तक की हानि हो सकती है। यह कीट सीधे फलों को नुकसान पहुँचाता है, जिससे फलों की गुणवत्ता एवं बाजार मूल्य दोनों प्रभावित होते हैं। वयस्क कीट एक छोटा गहरे भूरे रंग का पतंगा होता है जिसकी आयु सामान्यतः 3–5 दिन होती है। मादा पतंगा फूलों तथा मटर अथवा मार्बल अवस्था के कोमल फलों पर लगभग 10–15 अंडे देती है। अंडे 4–5 दिनों में फूट जाते हैं और उनसे निकली सूंडियाँ प्रारंभ में फल की सतह को खुरचकर खाती हैं, जबकि बाद की अवस्थाएँ फल के भीतर प्रवेश कर गूदे एवं कोमल बीजों को खाती हैं। इनके द्वारा छोड़ा गया मल फल के अंदर सड़न उत्पन्न करता है।

सौजन्यः हिरेकुरुबर एवं अन्य, 2023

नियंत्रणः

- बाग के आसपास उगने वाले जंगली बेर के पौधों को हटाना चाहिए क्योंकि वे इस कीट के वैकल्पिक आश्रय स्थल का कार्य करते हैं।

- संक्रमित, पक्षियों द्वारा क्षतिग्रस्त तथा गिरे हुए फलों को नियमित रूप से एकत्र कर नष्ट करना चाहिए ताकि कीट का जीवन चक्र बाधित हो सके।
- समय पर फल तुड़ाई तथा वृक्षों के नीचे मिट्टी की गुड़ाई या ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई करने से मिट्टी में छिपे प्यूपा नष्ट हो जाते हैं।
- रासायनिक नियंत्रण के लिए फलों की मटर अवस्था पर पहला छिड़काव मेलाथियान 50 EC (2 मि.ली. / लीटर), फेनवैलेरेट 20 EC (0.5 मि.ली. / लीटर) अथवा नीम बीज खली का अर्क (NSKE) 5 प्रतिशत का किया जा सकता है। दूसरा छिड़काव 15 दिन बाद तथा तीसरा फल पकने की अवस्था में वैकल्पिक कीटनाशियों के साथ करना चाहिए।

(3) तना एवं शाखा बेधक इल्लीः

बेर में तना एवं शाखा बेधक इल्ली का प्रकोप शाखाओं के जोड़ (forks) के निकट मल (frass) तथा जालीनुमा पदार्थ (webbing) से भरी हुई सुरंगों की उपस्थिति से आसानी से पहचाना जा सकता है। इस कीट की सूंडी छाल तथा उसके नीचे स्थित ऊतकों को खाकर लंबी सुरंगें बनाती है, जिससे जल एवं पोषक तत्वों का संचरण बाधित हो जाता है। गंभीर प्रकोप की स्थिति में शाखाएँ सूखने लगती हैं, वृक्ष की छत्रक की सघनता कम हो जाती है तथा फल उत्पादन में गिरावट आती है।

नियंत्रणः

- प्रभावी नियंत्रण के लिए यांत्रिक, रासायनिक एवं पारिस्थितिक उपायों का समन्वित उपयोग करना आवश्यक है। जैसे ही तनों या शाखाओं पर छेद दिखाई दें, उन्हें साफ करके उपयुक्त कीटनाशी घोल से उपचारित करना चाहिए। 1 लीटर मिट्टी का तेल (केरोसिन), 100 ग्राम साबुन को 19 लीटर पानी में मिलाकर तैयार घोल को छिद्रों में डालना चाहिए, जो सूंडियों के आवास को नष्ट कर उन्हें निर्जलित कर देता है।
- सीमित प्रकोप की स्थिति में पेट्रोल अथवा मिट्टी के तेल में भीगी हुई रूई को छिद्र के भीतर डालकर उसे मिट्टी से बंद कर देना भी एक प्रभावी उपाय है। इससे वायु का प्रवेश रुक जाता है तथा विषैली वाष्प सुरंग के भीतर पहुँचकर सूंडियों को नष्ट कर देती है।

(4) गुठली घुन

बेर के गुठली–घुन की मादा फल के वर्तिकाग्र पर अंडे देती है। अंडों से निकलने वाले नवजात शिशु अपरिपक्व अवस्था में फल की गुठली में छेद बनाकर बीज के अंदर प्रवेश करते हैं तथा प्रारंभ में कोमल बीजावरण को खाते हैं। बाद में वे बीज के एण्डोस्पर्म में नीचे की ओर बढ़ते हुए उसका भक्षण करते हैं। बीज के भीतर प्रवेश करने के पश्चात ये कीट बीज की आंतरिक सामग्री को खाते हुए उसी के अंदर खोखली सुरंगें बनाते हैं। संक्रमित फल गोलाकार दिखाई देते हैं तथा उनका आकार मटर से लेकर छोटे कंकड़ के समान रहता है। ऐसे फल सामान्य परिपक्वता प्राप्त नहीं कर पाते और उनका विकास प्रारंभिक अवस्था में ही रुक जाता है। फल में कीट के प्रवेश का छिद्र समय के साथ भरकर बंद हो जाता है, जबकि बाहर निकलने का छिद्र स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

नियंत्रणः

- कीट की उपस्थिति का पता लगते ही वयस्क घुनों को एकत्रित करके नष्ट कर देना चाहिए, जिससे उनकी जनसंख्या में कमी लाई जा सके।
- कीटग्रस्त एवं गिरे हुए फलों को एकत्र कर जला देना चाहिए ताकि कीट की जीवन–चक्र श्रृंखला टूट जाए और अगले मौसम में संक्रमण कम हो।
- गर्मियों में बाग की मिट्टी की गहरी जुताई करने से मिट्टी में छिपे हुए वयस्क घुन तेज धूप के संपर्क में आकर नष्ट हो जाते हैं।
- इल्लाइची तथा टिकड़ी किस्में बीज घुन के प्रति अपेक्षाकृत प्रतिरोधी पाई गई हैं।
- नीम बीज खली अर्क 5 प्रतिशत तथा एजाडिरैक्टिन 2000 पी.पी.एम. एवं 1000 पी.पी.एम. का प्रयोग बीज घुन के प्रकोप को कम करने में प्रभावी होता है।
- फल लगने से ठीक पूर्व स्पिनोसैड 2.5 SC और इंडोक्साकार्ब 14.5 EC का छिड़काव करना चाहिए। आवश्यकता होने पर 3 सप्ताह के अंतराल पर पुनः छिड़काव किया जा सकता है।

बेर में लगने वाले प्रमुख कीट एवं उनका निदान

(1) चूर्णिल आसिताः

यह रोग सामान्यतः अक्टूबर–नवंबर माह में आता है, जब तापमान अपेक्षाकृत कम तथा वातावरण आर्द्र एवं बादलों से घिरा रहता है। प्रारंभिक अवस्था में पत्तियों, पुष्पों एवं फलों की सतह पर सफेद चूर्ण जैसे धब्बे दिखाई देते हैं।

सौजन्यः विकासपेडिया, 2020

रोग की तीव्रता बढ़ने पर यह सफेद कवकीय आवरण संपूर्ण पत्ती एवं फल को ढक लेता है। प्रभावित फल समय से पूर्व झड़ जाते हैं अथवा सिकुड़े हुए, विकृत तथा कॉर्कयुक्त हो जाते हैं, जिससे उनकी बाजार गुणवत्ता गंभीर रूप से प्रभावित होती है। नवंबर माह में, जब औसत तापमान लगभग 19.2 °C तथा सापेक्षिक आर्द्रता 62.64 प्रतिशत होती है, तब रोग की तीव्रता सर्वाधिक पाई जाती है।

नियंत्रणः

- प्रतिरोधी किस्में जैसे छुहारा, सफेदा सेलेक्टेड, नाजुक, ग्लोरी, सनौर–2 तथा चाइनीज आदि किस्मों का चयन करना।
- रोग नियंत्रण हेतु कवकनाशियों जैसे ट्रायडाइमेफॉन (0.1%) सर्वाधिक प्रभावी पाया गया, इसके बाद थायोफेनेट–मिथाइल (0.1%) का छिड़काव रोग नियंत्रण के लिए अनुशंसित है। प्रति वृक्ष 250 ग्राम गंधक (सल्फर) का धूलन भी रोग नियंत्रण में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है।

(2) फल गलन

बेर के फलों का फल सड़न, कवकों के कारण उत्पन्न होने वाली एक महत्वपूर्ण समस्या है, जो फल की गुणवत्ता एवं विपणन क्षमता को गंभीर रूप से प्रभावित करती है। इस रोग के प्रमुख कारक कवकों में *फोमा* स्पिसीज, *कोलेटोट्राईकम* स्पिसीज, *अल्टरनेरिया* स्पिसीज एवं *पेस्टालोटिया वर्सीकॉलर* शामिल हैं। रोग के प्रारम्भिक लक्षणों में फल के निचले भाग पर हल्के धूसर–भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं, जो समय के साथ बड़े होकर गहरे भूरे रंग के वृत्ताकार छल्लों का रूप धारण कर सकते हैं। रोग की तीव्रता बढ़ने पर फल सड़ने लगते हैं।

नियंत्रणः

- बाग की स्वच्छता बनाए रखने के लिए संक्रमित, सड़े हुए एवं गिरे हुए फलों को नियमित रूप से एकत्र कर नष्ट करना चाहिए तथा वृक्षों के नीचे जमा सूखी पत्तियाँ, टहनियाँ और खरपतवार हटाने चाहिए, जिससे रोगजनकों के स्रोत कम हो सकें।
- संक्रमित अवशेषों को जलाकर अथवा गहरी मिट्टी में दबाकर नष्ट करना पुनः संक्रमण को रोकने में सहायक होता है।
- सिंचाई प्रबंधन के अंतर्गत फल पकने की अवस्था में ऊपरी (ओवरहेड) सिंचाई से बचना चाहिए तथा ड्रिप सिंचाई अपनानी चाहिए, जिससे पत्तियों एवं फलों के आसपास आर्द्रता कम रहे और कवकीय संक्रमण का प्रसार न हो।
- खेत में उचित जल निकास की व्यवस्था भी आवश्यक है ताकि जलभराव की स्थिति उत्पन्न न हो।
- वृक्षों की नियमित छंटाई कर अतिरिक्त एवं आपस में उलझी शाखाओं को हटाना चाहिए, जिससे वायु संचार बेहतर हो और रोग के लिए अनुकूल सूक्ष्म वातावरण विकसित न हो।
- फल विकास एवं पकने की अवस्था में कवकनाशियों का समय पर छिड़काव रोग नियंत्रण के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50 WP (0.25%; 2.5 ग्राम/लीटर पानी का 10–15 दिन के अंतराल पर छिड़काव किया जा सकता है।
- जैविक नियंत्रण के अंतर्गत ट्राईकोडर्मा विरिडी (CIAH –240) का 5 प्रतिशत निलंबन प्रभावी होता है।
- भंडारणोत्तर प्रबंधन के अंतर्गत फलों को 2 प्रतिशत सोडियम क्लोराइड घोल में 10 मिनट तक डुबोने से सतही कवकीय संक्रमण में कमी आती है।

(3) धूमल फफूंदीः

कालिखी फफूंद अथवा काला पत्ती धब्बा रोग के लक्षण मुख्यतः पत्तियों की निचली सतह पर काले धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। रोग की उन्नत अवस्था में पत्तियों की पूरी निचली सतह काले कालिखनुमा कवकीय आवरण से ढक जाती है, जिससे प्रकाश संश्लेषण प्रभावित होता है और अंततः पत्तियाँ समय से पूर्व झड़ने लगती हैं।

नियंत्रणः

- रोग के प्रभावी प्रबंधन हेतु प्रतिरोधी किस्मों जैसे जेड जी–3, सेब, बहादुरगढ़ तथा सफेदा रोहतक का चयन लाभदायक है।

- रासायनिक नियंत्रण के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 0.6 प्रतिशत अथवा इमिडाक्लोप्रिड 0.2 प्रतिशत का 15 दिन के अंतराल पर छिड़काव करने से रोग पर प्रभावी नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है।
- बाग की नियमित सफाई पर विषेश ध्यान देवें।

तुड़ाईः

फल तुड़ाई का निर्णय दृश्य, भौतिक एवं रासायनिक परिपक्वता सूचकों के आधार पर किया जाना चाहिए। बेर की तुड़ाई उस समय करनी चाहिए जब फल पूर्ण आकार प्राप्त कर लें तथा उनकी त्वचा (छिलका) का रंग गहरे हरे से हल्के हरे, हरित–पीले अथवा सुनहरे पीले रंग में परिवर्तित होने लगे। दूरस्थ बाजारों में परिवहन के लिए सामान्यतः ब्रेकर अवस्था (हल्के हरे से हल्के पीले रंग की अवस्था) को सर्वोत्तम माना जाता है, क्योंकि इस अवस्था में फल परिवहन के दौरान सुरक्षित रहते हैं तथा उनकी गुणवत्ता भी बनी रहती है। चूँकि बेर एक अ–अवश्वासी (non – climacteric) फल है, इसलिए इसे वृक्ष पर पूर्ण दैहिक परिपक्वता (physiological maturity) की अवस्था पूरी करने के बाद ही तोड़ना चाहिए। परिपक्व अवस्था आाने पर फल का विशिष्ट गुरुत्व (specific gravity) सामान्यतः 0.92–0.98 के बीच हो जाता है, जिसके कारण परिपक्व फल प्रायः पानी में तैरने लगते हैं। रासायनिक दृष्टि से, तुड़ाई के समय फलों में कुल घुलनशील ठोस पदार्थ की मात्रा सामान्यतः 12–18 प्रतिशत के बीच होती है, जो किस्म के अनुसार भिन्न हो सकती है।

उपजः

बेर विश्व के सर्वाधिक उत्पादक शुष्क एवं अर्ध–शुष्क फल वृक्षों में से एक है। इसकी वास्तविक उपज वृक्ष की आयु, किस्म, पौधों की दूरी, सिंचाई, पोषण प्रबंधन, छंटाई तथा जलवायु पर निर्भर करती है। सामान्यतः कलमयुक्त वृक्ष रोपण के 3–4 वर्ष बाद फल देना प्रारम्भ कर देते हैं तथा 8–10 वर्ष की आयु में पूर्ण उत्पादन क्षमता प्राप्त कर लेते हैं। अनुकूल प्रबंधन के अंतर्गत एक परिपक्व बेर का वृक्ष सामान्यतः 60–120 किग्रा फल प्रति वर्ष उत्पन्न करता है। उच्च उत्पादक किस्मों जैसे उमरान, गोला तथा कैथली में यह उत्पादन 150–200 किग्रा प्रति वृक्ष तक पहुँच सकता है।